ISSN : 2456-8856

पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2024-2026 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 26, अंक 245 मार्च 2024

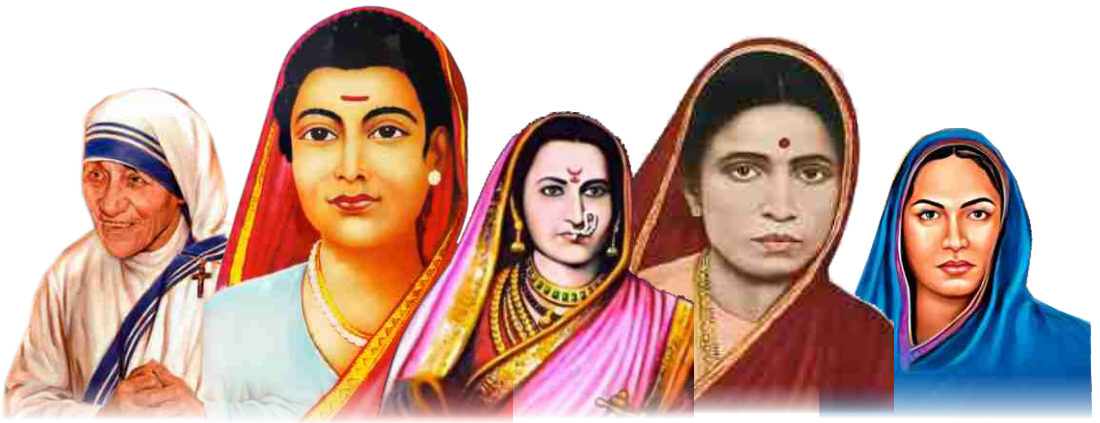

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस

की

हार्दिक शुभकामनाएँ

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 26 अंक 245
मार्च 2024

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

Peer Review Committee
डॉ. श्रवणकुमार मेघ, जोधपुर(राजस्थान)
प्रो. दत्तात्रय मुरुमकर, मुंबई (महाराष्ट्र)
प्रो. रहिम श्रीवास्तव, उज्जैन (म.प्र.)
डॉ. बी.ए.सावंत, सांगली (महाराष्ट्र)

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	3
2	दलित साहित्य और सौन्दर्य शास्त्र	डॉ. फातिमा बीवी आर	4
3	The Chilling Consequences of Wrongful Conviction	Varsha Gulaya Prof. (Dr.) K.B. Asthana	6
4	योग मनोविज्ञान एवं समग्र स्वास्थ्य	डॉ. मीरा त्यागी	10
5	इलेक्ट्रिक व्हीकल्स : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	राकेश कविता ए. जैन	12
6	दलित राजनीतिक चेतना के अभ्युदय में सोशल मीडिया की भूमिका	डॉ. अनुपम चतुर्वेदी	13
7	दलित शब्द की कीवर्ड के रूप में पुनर्कल्पना व विश्लेषण	सौरभ कुमार सृष्टि श्रीवास्तव	16
8	मध्यप्रदेश की अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की बालिकाओं की शैक्षिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं का अध्ययन	डॉ. शिखा बनर्जी	18
9	An Overview of Land Revenue Settlement in Jammu and Kashmir during Dogra Period (1846-1947)	Dr. Javid Ahmad Moochi	21
10	हाशिए का समाज और दलित आत्मकथाएँ	डॉ. ओमप्रकाश सैनी (डी.लिट्)	25

UGC Care Listed Journal
खाते का नाम – आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.- 63040357829
बैंक – भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा- फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 20/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 200/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 2,000/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 20,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

मार्क्स ने अपने चिंतन के आरंभिक दौर में कहा था कि आर्थिक समानता समस्त प्रकार की समानताओं का मूल है। अर्थात् चाहे वह महिलाओं की समानता का प्रश्न हो दलित–पिछड़ों की समानता का मामला हो, जब तक वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं होते हैं, तब तक समानता की सद्इच्छा का कोई मतलब नहीं है।

आर्थिक स्वतंत्रता के लिए आज महिलाएं कई क्षेत्रों में बाहर आई है। नौकरी करने व आर्थिक समृद्धि के लिये उन्हं तेजी से छूट मिल रही है, किंतु वैयक्तिक स्वतंत्रता नहीं होने से उसका दोहरा शोषण हो रहा है। भौतिक उन्नति के इस दौर में उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव व्यक्ति को आकर्षित तो करता है लेकिन महिला का वही चौका–चूल्हा उसे आज भी जकड़े हुए है। मजदूर, श्रमिक ग्रामीण महिलाएं आज भी मीलों दूर से सिर पर पानी ढोती, धुआँ से आंखें जोड़ती, राख से बर्तन मांझती गंदलाईसी बस जीवन के दिन गुजारती है। कुछ अपवादों को छोड़कर वैयक्तिक स्वतंत्रता के नाम पर भारतीय परिवेश में महिलाओं को सामंजस्य बैठा पाना कठिन है। यद्यपि दूरदर्शन के प्रचार–प्रसार से परिवर्तन आया है। शिक्षित और आत्म निर्भर महिला को वैयक्तिक स्वतंत्रता तो मिली है, किंतु उससे उसका सुख–चैन छिन गया है। उसे दोहरे कार्यभार की विभीषिका से गुजरना पड़ रहा है। हजारों आन्दोलनों की आक्रामक मुद्राओं में महिला प्रतिष्ठा की बात कही जाती है परंतु हमारा समाज उसे आज तक समग्र रूपेण 'देवी' से 'मानवी' रूप में प्रतिष्ठित करने में असमर्थ रहा है। ''गुलामी की यातना को जो सहता है वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह सकता है। सचमुच राख ही जानती है जलने का अनुभव, कोई और नहीं।'' ''कत विधि सृजी नारी जग मांहि, पराधीन सपने हुं सुख नाहि'' वाली सदियों पुरानी मानसिकता से उबरने के लिये वे पूरी ताकत से जूझ रही है–अपने आप से, अपने परिवेश से।

इक्कीसवीं सदी को सारे संसार में महिलाओं को सशक्त बनाना तथा आर्थिक रूप से उन्हें स्वावलम्बी बनाना है परन्तु विडम्बना यह है कि इस सदी के आरंभिक वर्ष ही महिलाओं पर अत्याचार और उत्पीड़न से भरे हुए हैं। आज महिलाएं न तो घर में सुरक्षित है और न ही बाहर। दिल्ली, मुंबई, कोलकाता, चेन्नई, भोपाल, जयपुर, बैंगलोर, हैदराबाद जैसे महानगरों में पारिवारिक सदस्यों और घरेलू नौकरों तथा जान–पहचान के लोगों द्वारा महिलाओं के साथ दुष्कृत्य के सैंकड़ों उदाहरण प्रकाश में आये है। वहीं दूसरी ओर ग्रामीण अंचलों से भी वीभत्स और पैशाचिक रूप से महिलाओं से सामूहिक बलात्कार की खबरों से सभ्य समाज दहला हुआ है।

दहेज तथा अन्य कारणों से भी महिलाओं से मारपीट ही नहीं उनकी हत्या पर भी अंकुश नहीं लग पा रहा है। हमारा देश तो महिलाओं का सम्मान करनेवाला देश है। भारतीय संस्कृति का आदर्श वाक्य है कि–जिस घर में नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। नारी को घर की लक्ष्मी कहा जाता है। घर–परिवार की सुख–समृद्धि का श्रेय नारी को ही दिया जाता है, ऐसे देश और ऐसे समाज में नारियों की यह दुर्दशा हर एक के लिये चिंताजनक है।

महिलाएं चाहे किसी भी देश की हो, जीवन भर काम करती है, लेकिन उनके द्वारा किये जाने वाले कामों जैसे– पानी, चारा, ईंधन लाना, खाना पकाना, घर–बर्तन और कपड़ों की सफाई, बच्चों की देखभाल, वृद्धों की सेवा, पारिवारिक खेतों व व्यवसाय में निःशुल्क सहयोग को अनुत्पाद माना जाता है और उनके द्वारा किये गये इन महत्वपूर्ण कार्यों को राष्ट्रीय आँकड़ों से प्रायः गायब कर दिया जाता है।

सर्वेक्षण के आधार पर आंकड़े एकत्रित करनेवाली सभी एजेंसियाँ यह मानती है कि महिलाओं के योगदान को बहुत कम करके आंका जाता है। 2001 की जनगणना में महिला कामगारों की पहचान करने और उन्हें जनगणना में दर्ज करन की कोशिश की गई, लेकिन घरेलू काम करनेवाली महिलाएं इस बार भी अदृश्य ही रही। यद्यपि महिला एवं पुरुष में बगैर किसी भेदभाव के समान काम, समान मजदूरी का कानूनी प्रावधान है, लेकिन वास्तव में महिला कामगारों को अपने पुरुष सहकर्मी से लगभग 30 प्रतिशत कम मजदूरी मिलती है। 'सेवा' संस्थान के अध्ययन से पता चला है कि 85 प्रतिशत महिलाओं की आमदनी सरकारी तौर पर घोषित निर्धन श्रेणी की आमदनी का भी महज 50 प्रतिशत है और इन महिलाओं को स्वास्थ्य, बीमा या वृद्धावस्था पेंशन जैसे सामाजिक सुरक्षा लाभ भी नहीं मिलते, श्रमिक महिलाओं के लिये काम करने के क्षेत्र भी बहुत सुरक्षित नहीं है। स्पष्ट है कि मजदूरी में भी लिंगभेद किया जाता है।

शक्ति सहित व्यक्ति ही सर्व शक्तिमान हो सकता है। अतः महिलाओं की स्थिति में बदलाव के लिये शिक्षा एक महत्वपूर्ण हथियार है। जिन परिवारों में महिलाएं शिक्षित होती है, उनमें लड़कियों के साथ भेदभाव कम होता है और उन्हें आगे बढ़ने के समान अवसर प्राप्त होते हैं। पढ़ी–लिखी लड़कियां घर से बाहर निकलकर काम करना शुरु करती है और जरूरत पड़ने पर मां–बाप की देखभाल भी करती है।

वैश्वीकरण के इस दौर में राष्ट्र की प्रगति एवं विकास हेतु महिलाओं की आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थिति में सुधार की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। कानून और शासकीय कोशिशों के साथ ही जनसामान्य की सहभागिता जरूरी है। लड़के और लड़कियों को स्वयं के प्रति, परिवार के प्रति तथा समाज और देश के प्रति जिम्मेदार होना होगा। बालिका शिक्षित बालक जिम्मेदार और हम स्वयं बेहतर और संवेदनशील नागरिक बन सके तो महिलाएं न केवल अपना विकास कर पाएगी बल्कि सशक्त भी होंगी। और महिला अगर सशक्त होती है, खुशहाल होती है तो राष्ट्र सशक्त होता है, समृद्ध होता है।

– डॉ. तारा परमार

दलित साहित्य और सौन्दर्य शास्त्र

– डॉ. फातिमा बीवी आर

साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत काव्य शास्त्र से लेकर समकालीन समय तक सौन्दर्य शास्त्र का प्रश्न अत्यंत जटिल ही रहा है। मुख्य रूप से आधुनिक काल के पूर्व जहां साहित्य का मूल उद्देश्य रस निरूपण और आनंद रहा था तब ऐसे सोच का कायम रहना स्वाभाविक है। लेकिन क्या समकालीन समय में भी साहित्य के मूल्यांकन व विवेचन विश्लेषण के लिए सौन्दर्य शास्त्र का होना जरूरी है ? मेरे विचार से हाँ। किसी भी प्रकार के साहित्य के लिए उसके अनुरूप सौन्दर्य शास्त्र और मूल्यांकन की कसौटी का होना आवश्यक है । बहरहाल समकालीन साहित्य मुख्य रूप से अस्मितावादी साहित्य के संदर्भ में सौन्दर्य शास्त्र का प्रश्न और भी जटिल है।

समकालीन अस्मितावादी विमर्शों में प्रमुख है– दलित विमर्श। दलित साहित्य का स्वरूप और लक्ष्य पारंपरिक साहित्य से नितांत भिन्न है। अन्य विमर्शवादी साहित्य के समान दलित साहित्य भी अपना अलग वैचारिकी और दर्शन है। दलित साहित्य मात्र एक सर्जनात्मक अभिव्यक्ति नहीं है। वह एक से प्रकार शोषण के विरुद्ध बना साहित्यिक आंदोलन है। इसलिए दलित साहित्य को प्रतिरोध के सृजनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है। उसका चरित्र विद्रोहात्मक है। यह विद्रोही चरित्र का जन्म क्रान्ति की कोख से हुआ, जिसमें ऊर्जा प्रदान करने वाले लोग फुले, अंबेडकर जैसे महान क्रांतिकारी नेता हैं। ऐसे साहित्य के लिए जब सौंदर्य शास्त्र की चर्चा करेंगे तो बहुत ही सावधानी बरतना जरूरी है। क्योंकि समकालीन साहित्य सामाजिक साहित्य है। जिसके केंद्र में रसास्वादन नहीं बल्कि मानव और उनका जीवन यथार्थ है। दलित साहित्य इससे भिन्न नहीं है। ऐसे साहित्य की कसौटी हमेशा सत्यम, शिवम, सुंदरम नहीं हो सकती। सच्चाई या यथार्थ तो साहित्य के केंद्र में है लेकिन दलित साहित्य से हमेशा शिवम की और सुंदरता की कामना करना गलत है। अब साहित्य सौंदर्य शास्त्र की सैद्धांतिकी, रसास्वादन, कलात्मकता, मनोरंजन आदि खेमों से दूर हटकर सामाजिक उपयोगिता को महत्व दे रहा है जो समय की मांग है। इस नए परिप्रेक्ष्य के अनुरूप अब सौंदर्य शास्त्र को भी बदलना होगा ।

ये तो सच हैं कि साहित्यकार की सौन्दर्य दृष्टि काल सापेक्ष है। वे समाज के साथ चलकर उस समाज के भीतर से अपने साहित्य के लिए विषय वस्तु चुनते हैं। दलित रचनाकार भी इससे भिन्न नहीं है। दलित रचनाकार की विषय वस्तु दलित समाज और उनका शोषण, प्रतिरोध और विद्रोह हैं । क्योंकि यही उनका जीवन यथार्थ है। ऐसे साहित्य की श्रेष्ठता नापने के लिए पुराने प्रतिमान सशक्त नहीं है। हालांकि कुछ आलोचकों के अनुसार अब भी श्रेष्ठ साहित्य को अलंकार, छंद, रस निरूपण और परिमार्जित भाषा आदि कसौटियों से कसवाना जरूरी हैं। उनके लिए श्रेष्ठ साहित्य वही है जिसमें रसास्वादन के मूल्य व सौंदर्यवादी चेतना हो। अस्मितावादी साहित्य के संदर्भ में यह दृष्टि सही नहीं। समकालीन समय में प्रत्येक हाशियेकृत समाज साहित्य के माध्यम से अपना अस्तित्व बनाय रखने का प्रयास कर रहे हैं। हर नयी धारा अपनी विशेष वैचारिकी और लक्ष्य को पकड़कर आगे बढ़ रही है। ऐसे में इतने भिन्नताओं से युक्त साहित्य के विवेचन विश्लेषण के लिए एक ही सौन्दर्य शास्त्र का प्रयोग करना कहाँ तक तर्क संगत होगा ? इसलिए दलित साहित्य के लिए अपना अलग सौन्दर्य शास्त्र का होना जरूरी है। वह सौंदर्य शास्त्र ऐसे प्रतिमानों से युक्त होना जरूरी है जो समाज शास्त्रीय मूल्यों से और दलित जीवन से जुड़े हो।

आलोचना साहित्य की प्रतिक्रिया है। किसी भी प्रकार की नयी साहित्य धारा के लिए उसके अनुरूप मूल्यांकन पद्धति और साहित्यिक प्रतिमानों का निर्माण

होना जरूरी है। यदि समाज परिवर्तन शील है और उसके बदलाव साहित्य में प्रतिबिम्बित है तो उसके समानान्तर चलनेवाली आलोचना और उसके प्रतिमान में भी बदलाव आना जरूरी है। मराठी आलोचक शरण कुमार लिंबाले के शब्दों में "कला नामक संकल्पना अस्थिर और परिवर्तनशील होती है। कला का स्वरूप असीमित होने के कारण उसकी निश्चित–कसौटी देना संभव नहीं है। बदलती संस्कृति के साथ साहित्य भी बदलता है। यदि ये कसौटियाँ बदलती नहीं हैं तो साहित्य और समीक्षा दोनों का रिश्ता टूट जाएगा।[1]" समकालीन दलित साहित्य भी यही रिश्ता बनाये रखने का प्रयास कर रहा है। दलित साहित्य के समुचित विकास के लिए सही मूल्यांकन पद्धति का होना अनिवार्य है। क्योंकि दलित साहित्य अनुभव जन्य साहित्य है। उसमें सहानुभूति नहीं स्वानूभूति की अभिव्यक्ति है। आह से उपजकर चीख के साथ बाहर निकलनेवाले जीवन यथार्थ को जब सौंदर्य शस्त्र की कसौटी में बिठाएंगे तो सावधानी बरतनी होगी। रमणिका गुप्ता भी इस संदर्भ में कहती हैं कि "दलित साहित्य का अपना सौंदर्यशास्त्र निर्मित हो रहा है। वर्षों पुराना घिसा–पीटा सौंदर्यशास्त्र अब उसकी कसौटी नहीं बन सकता। सवर्णों का सौंदर्यशास्त्र सत्यम, शिवम, सुंदरम पर आधारित है। उनका वही सत्य दलितों का शोषण कर रहा है। उनका शिवम दलितों की कुरूपता पर निर्मित होता है। इसलिए वह सौंदर्यशास्त्र दलित साहित्य के लक्ष्य के बिलकुल विपरीत है।[2]" दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र वास्तव में दलित समाज का सौंदर्य शास्त्र है । इसका निर्माण खुद दलित रचनाकारों ने किया है। बस उसको श्रेणी बद्ध करना बाकी है।

दलित साहित्य के नए प्रतिमान क्या–क्या होने चाहिए, जरा इस पर ध्यान देते हैं । मेरे विचार में दलित साहित्य के सबसे प्रमुख प्रतिमान के रूप में दलित जीवन यथार्थ को स्थान देना उचित रहेगा। क्योंकि दलित साहित्य का मूल बिन्दु दलित समाज और उनके स्वानुभूतिपरक जीवन यथार्थ है। दूसरे प्रतिमान के रूप में दलित जागरण और चेतना को देखना उचित रहेगा। इस सृजनात्मक आंदोलन का मुख्य लक्ष्य दलित समाज में जागरण पैदा करना और दलित मानस में चेतना पैदा करना है। यदि दलित रचनाकारों का साहित्य इसमें पराजित हो जाएगा तो उसको सच्चा दलित साहित्य कैसे पुकार सकते हैं ? आगे हमें समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व का भाव, अंबेडकरवादी दृष्टि, सामाजिक कल्याण का भाव, प्रतिरोधी चेतना, विद्रोह और नकार का भाव, रूढ़ियों का विरोध, जातिवाद का विरोध, ब्राह्मणवाद का विरोध आदि तत्वों को दलित साहित्य के प्रतिमान के रूप में स्वीकारना चाहिए। क्योंकि ये सारे तत्व सम्पूर्ण दलित जीवन से जुड़े हुए हैं। दलित साहित्य का मूल्यांकन इन विशेष मूल्यों पर आधारित होना चाहिए। इन्हीं मूल्यों की कसौटी पर खरा उतरने वाला साहित्य ही प्रामाणिक दलित साहित्य की श्रेणी में रखा जा सकती है। यदि हम ऐसे एक सौन्दर्य शास्त्र और प्रतिमानों का निर्माण करने का प्रयास करेंगे और उन्हीं दृष्टि से दलित साहित्य का विवेचन विश्लेषण कर पाएंगे तो दलित साहित्य के साथ न्याय कर पाएगें। साथ ही दलित साहित्य के विकास में भी यह प्रयास सहायक सिद्ध होगा।

किसी भी प्रकार के रचना के मूल्यांकन के लिए एक नहीं अनेक कसौटियों का और प्रतिमानों का प्रयोग होना चाहिए। इसलिए साहित्य मूल्यांकन हेतु स्थिर कसौटी या निश्चित कसौटी के आग्रह को अब छोड़ देना चाहिए। दलित रचनाकार साहित्यिक आलोचकों से वाह–वाह की कामना नहीं कर रहे है। उनका साहित्य पांडित्य प्रदर्शन के बजाय जाति व्यवस्था के खिलाफ समानता की मांग करने के साधन के रूप में काम करता है। इसलिए दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए प्रतिरोध के सौन्दर्य शास्त्र का निर्माण होना चाहिए जो परंपरागत सौंदर्य शास्त्र से नितांत भिन्न हो। इस विषय पर रजत रानी मीनू का मत देखिये, उनके अनुसार "दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र परंपरागत हिन्दी साहित्य के सौंदर्यशास्त्र से पूर्णतया भिन्न होगा।

आलोचकों और पाठकों को इस सौन्दर्य शास्त्र को देखने के लिए परंपरागत दृष्टि भी बदलनी होगी। दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र को शब्दों के चमत्कार में उलझाना आवश्यक नहीं। इस साहित्य में जीवन को सुंदर बनाने केलिए संघर्षों की चमक होगी, ऐसी अपेक्षा की जाती है। इसकी खोज परंपरागत सौंदर्यशास्त्र के सिद्धांतों, पुराने प्रतिमानों और सामंती मूल्यों के अनुसार नहीं हो सकती। इसे साहित्य के नए प्रतिमान चाहिए। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र वाक्यों की विशेष बनावट, परिमार्जित रचनात्मकता, साहित्यिक कलात्मकता तथा अलंकरण की अपेक्षा कथ्य को महत्व प्रदान करता है। वंचित, उपेक्षित, शोषित व दलित जीवन की स्थितियों को लेकर की गयी साहित्यिक सर्जना रचनात्मकता के अभाव में भी पाठक पर अपना प्रभाव छोड़ती है।[3]" उनके मत से भी यह साफ हो जाता है कि दलित साहित्य का उद्देश्य कल्पना का चित्रण या मनोरंजन व आनंद प्राप्ति नहीं बल्कि दलित जागरण दलित जीवन सुधार और सामाजिक समानता है। ऐसे में उसकी आलोचना के लिए इसके अनुकूल प्रतिमानों का और एक नयी सौन्दर्य शास्त्रीय दृष्टि का प्रयोग करना जरूरी है। समकालीन समय में दलित आलोचकों का मुख्य प्रयास इस प्रकार एक नए सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टि की स्थापना करना है जो दलित साहित्य के उत्तरोत्तर विकास केलिए अत्यंत आवश्यक है ।

- Dr. Fatima Beevi R.
Post doc fellow
Cusat, Kochi, (Keral)-682022
मोबा. 9562739735

संदर्भ :

1. दलित साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र – शरण कुमार लिंबाले, पृष्ठ संख्या 108
2. रमणिका गुप्ता, दलित हस्तक्षेप, सं रमणिका गुप्ता पृष्ठ 20
3. रजत रानी मीनू – हिन्दी दलित कथा – साहित्य य अवधारणाएँ और विधाएँ, पृष्ठ संख्या 21

The Chilling consequences of Wrongful Conviction

- Varsha Gulaya*
- Prof. (Dr.) K.B. Asthana**

Abstract

The nuances of wrongful conviction is often underscored by the administration around the world. The trauma of being imprisoned and convicted for a crime that a person has not committed is unexplainable. The agony wrongfully convicted persons is shadowed by the misery highlighted by the criminal justice administration of the primary victims.

Hence authors in this article aims to describe the plight of wrongful conviction.

I. Introduction

Wrongful convictions devastate lives, as they not only rob individuals of their freedom but also inflict severe psychological damage. This damage often spans a spectrum, from immediate emotional trauma to long term mental health repercussions.

Wrongful conviction covers situation where a person has been wrongly adjudged as guilty of a crime s/he has not committed. The reasons for conviction may vary, it may be factual error or procedural error. Thus under-standing the agony of wrongful conviction is pivotal to actually address the concerns

relating to it. While each wrongfully convicted person's journey is unique, the shared thread of strength, hope and adaptability are undeniable. The needs to reaffirm the faith of wrongfully convicted persons in the administration is quintessential.

II. Psychological & Emotional Consequences

When justice fails and an innocent person is convicted, the emotional fallout is profound. The initial shock of a wrongful conviction can give rise to an avalanche of emotions. Ranging from disbelief and despair to anger and fear. These emotions aren't fleeting; rather, they tend to leave a lasting mark, thereby influencing the mental health of wrongfully convicted for years, if not decades.

To begin with, the very act of being wrongfully convicted can be likened to a form of psychological assault. The individual undergoes an experience that is both sudden and life altering. This initial trauma can be so profound that it lays the groundwork for severe emotional disturbances in the future.

Depression is a common affliction among exonerees. The crushing weight of being incarcerated for a crime they didn't commit. Combined with the isolation of prison life, often results in feelings of hopelessness. A study found that wrongfully convicted individuals showed higher rates of depressions compared to the general population, underscoring the heavy emotional toll of such convictions.

The emotional trauma and subsequent mental health effects arising from wrongful convictions are multifa-ceted and profound. Compre-hensive psychological support is essential to help exonerees navigate and heal from their traumas, ensuring they can rebuild their lives with dignity and hope.

It is important to understand that the family members undergo a form of secondary victimization. They are thrust into a limelight they neither sought nor prepared for, often facing skepticism, judgment and social ostracization. Children may face bullying in schools, and spouses might experience isolation in workplaces or within their social circles.

The acquittal of the wrongfully convicted might seem like the end of the ordeal, but for families, it's a new chapter filled with its own set of challenges. There's joy of reunion, but it's juxtaposed with the pain of lost years and altered life trajectories.

III. Economic Consequences

Wrongful convictions don't just rob individuals of their freedom. They can strip away livelihoods, rendering exonerees economically vulnerable upon release. When an individual is impri-

soned due to wrongful conviction for a long duration, their families are left without any financial support and emotional support. Not only do they lose out on potential earnings that they would have otherwise generated has they remained employed but they also are frowned upon by potential employers when they are released after being acquitted of the charges by the higher courts. During the period of incarceration, even if an individual had assets or savings, they might be quickly exhausted to fulfill the needs of dependent family members or to bear the legal costs. And, also face the uphill task of repaying accumulated debts.

Moreover, the rapid advancement of technology and industry specific skills during their time of incarceration means many exonerees return to a world where skills are outdated or irrelevant.

Several countries do have compensation schemes or regulations in place, but the terms, conditions and amounts differ considerably. The reality of compensation schemes fall short of ideals enunciated in international human right instruments, like International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR) which prescribes that victims of miscarriage of justice should be compensated.

IV. Challenges of Reintegration

Wrongful conviction leaves a long shadow of doubt and suspicion in the society at large. While exoneration should theoretically restore one's reputation and status, it doesn't erase the social memories of the initial conviction. The society's perception of the wrongfully convicted is a troublesome issue, profoundly influenced by a mix of media portrayals, lack of public awareness about the flaws of the justice system, and deeply ingrained notions of guilt and innocence.

Even after exoneration, these images and stories can persist in collective memory overshadowing the new narrative of innocence.

Further complicating matters is the fact that exoneration doesn't always equate to 'innocence' in the public eye. Instead, it may be seen as a technicality or a loophole in the legal system. The assumption, for many, remains: "there's no smoke without fire". This perspective can render the exonerees as a perpetual suspect in the eyes of society, often ostracized and regarded with wary eye.

V. Addressing the stigma of wrongful conviction :

Overcoming the stigma associated with wrongful conviction requires a multi-factor approach, involving -

a. Personal Resilience and Education : one of the first step in confrontins tigma is for exonerees to educate themselves about wrongful

convictions and cha-llenge the misconceptions head-on by providing factual rebuttals.

b. Community outreach.

c. Media and documentary collaborations.

d. Support Groups & Peer counseling.

e. Legal Policy advocacy :

These might include pushing for compensation for exonerees or mandatory post release support programs that minimize the chances of future wrongful convictions. Many nations have organizations dedicated to reviewing potential wrongful convictions, such as the Innocence Project in the United States

VI. Conclusion :

The wrongful conviction and subsequent exoneration journey is far from being just a personal battle. It is deeply intertwined with societal perceptions, biases and a broader understanding of justice. For true rehabilitation, society itself needs a transformation in its perceptions. And that starts with awareness, empathy and a will to rectify injustices of wrongful convictions.

Legal redress is also an essential aspect of ensuring justice for wrongfully convicted person. Comprehensive legislative reforms coupled with genuine commitment to recognising and supporting the multifaceted challenges faced by them, are imperative.

- Varsha Gulaya*
(Ph.D. Scholar, Maharishi University of Information Technology)
Mob. 8130398800
- Prof. (Dr.) K.B. Asthana**
(Dean, School of Law, Maharishi University of Information Technology)

References :

1. Adams, B. & Logan, W. (2012). Compensation for Wrongful Convictions: Current Trends and Challenges. Criminal Law Review, 11(3), 204-223.
2. Adler, F. (2018). Legislative Reforms as Tools for social change in the context of wrongful convictions. Law and Social Inquiry, 43(2), 512-530.
3. Grant, L., & Davis, T. (2019). Economic Stability and Social Reintegration of Exonerees. Sociological Inquiry, 49(4), 1024-1041.
4. Olsen, H. (2019). The Power of Apology: State responsibility and wrongful convictions. International Journal of Transitional Justice, 13(1), 41-60.
5. Peterson, K. (2018). Revoking Redemption: Professional Licenses and Wrongful Convictions. Law Review 47(1), 115-135.
6. Roberts, S., & Norris, R.J. (2017). The Infrastructure of Injustice: A comparative Analysis of the collateral consequences of criminal convictions. Justice Quarterly, 34(4), 598-625.
7. Scheck, B. Neufeld, P. & Dwyer, J. (2000). Actual Innocence. New York: Doubleday.
8. Smith, L., & Roberts, B. (2013). Media Influence on Perceptions of wrongful convictions: Exploring the Myth of unfettered Freedom. Media, Culture & Society, 35(6), 738-753.
9. Walker, E. & Johnson, K. (2019). Coming home: The family dynamics of reentry after wrongful conviction. Crime and Family Dynamics, 40(3), 210-227.

योग मनोविज्ञान एवं समग्र स्वास्थ्य

– डॉ. मीरा त्यागी[1]

योग की परिभाषा देते हुए पतंजलि कहते है – चित्त की वृत्तियों का निरोध करना योग है।[2] इस परिभाषा में चित्त, वृत्ति एवं निरोध में तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं। चित्त से अभिप्राय यहाँ अन्तःकरण (मन, बुद्धि और अहंकार) से लिया गया है। चित्त शब्द का मन के पर्याय के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। चित्त सत्त्वप्रधान प्रकृति का परिणाम है अर्थात् प्रकृति के परिणामों में सबसे अधिक सत्त्व का उदय चित्त में होता है। चित्त प्राकृत होने से जड़ और प्रतिक्षण परिणामशील है। यह चित्त सत्व, रज और तम की अधिकता के कारण क्रमशः तीन प्रकार का होता है–प्रज्ञाशील चित्त, प्रवृत्तिशील चित्त तथा स्थितिशील चित्त। प्रज्ञा (ज्ञान) रूप चित्त सत्व, रज और तम से संतुष्ट होने पर ऐश्वर्य और शब्दादि विषयों का प्रेमी बनता है। तम से युक्त होने पर यही चित्त अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य से व्याप्त हो जाता है। तमक्षील होने पर रज के अंश से युक्त होने पर चित्त सर्वत्र प्रद्योतमान होता है और धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य से युक्त होता है। प्रथम अवस्था में चित्त ऐश्वर्य और विषयों को केवल चाहता रहता है, परन्तु वे उसे प्राप्त नहीं हो पाते क्योंकि वह रज और तम से संयुक्त होता है, तथापि इस दिशा में सात्विक गुण की अधिकता से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। जब चित्त में रज का लेशमात्र भी मल नहीं रहता, तब सत्व प्रधान चित्त स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर प्रकृति पुरुष की अन्यथा ख्याति या विवेक ज्ञान प्राप्त कर धर्ममेध समाधि से समन्वित हो जाता है।

योग की परिभाषा में दूसरा शब्द वृत्ति है । वृत्ति का अर्थ बताते हुए महर्षि व्यास कहते हैं–चित्त का परिणाम विशेष ही चित्त की वृत्तियाँ है[3], जब चित्त अपने मूल रूप को छोड़कर विषयों के सम्पर्क में जाकर उनके आकार का होता रहता है तो उसे ही चित्त का परिणाम कहा जाता है। शास्त्रों में चित्त को स्वच्छ दर्पण या शुद्ध स्फटिक के समान बताया गया है, वह जिस भी विषय के सम्पर्क में होता है उसी का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता है। चित्त का विषयकार होना ही उसकी वृत्ति है, या साधारण शब्दों में कहें तो यही चित्त में उत्पन्न होने वाले विचार हैं।

योग साधना की सतत् उपेक्षा से पनपी आधुनिक युग की विकृत जीवन शैली के कारण रोगों की जैसे बाढ़ सी आ गयी है। शारीरिक रोगों में तो वृद्धि हो ही रही है साथ ही मनोकायिक एवं मानसिक रोगों की भी अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है जो स्वास्थ्य के लिए गंभीर संकट का कारण बनी हुई है। इनकी जटिल एवं सूक्ष्म प्रकृति के कारण आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इनके सामने असहाय स्थिति में अपने आपकों अनुभव करता है। आज आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का भी मानना है कि पूर्ण रूपेण शारीरिक रोग तो बहुत कम है, बल्कि अधिकतर रोग मनोकायिक है। मनोकायिक रोग मन की गहराइयों में पलते हैं तत्पश्चात् शरीर के धरातल पर प्रकट होते हैं। इस श्रेणी के रोगों में कुछ मुख्य रोग इस प्रकार है–दमा, पौष्टिक अल्सर, कारोनरी (हार्टएटैक), थ्राम्बोसिस, अल्सरेटिव कोलाइटिस, मधुमेह, कैंसर, एंग्जाइटी, न्यूरेसिस, हाइपर टेंशन आदि। आधुनिक चिकित्सा पद्धति मात्र शरीरिक लक्षणों के आधार पर इनका उपचार करती है, व इनके पूर्ण निदान में प्रायः असफल रहती है।

इस संदर्भ में किये गये प्रयोगों के तहत यौगिक क्रियाओं को आशाजनक स्थिति तक सफल पाया गया है। इसी कारण चिकित्सा विज्ञानियों का योग जीवन पद्धति की और मुड़ना स्वाभाविक ही है। योग अपनी समग्र एवं सूक्ष्म दृष्टि के कारण समग्र स्वास्थ्य का आश्वासन देता हुआ अनुभव हो रहा है। मनोकायिक रोग हो चाहे मानसिक रोग हो सभी में यौगिक क्रियाओं षट्कर्म[4], आसन[5], प्राणायाम[6], ध्यान[7] आदि के प्रयोगों के पश्चात् उनकी सफलता पूर्ण चिकित्सा की गयी है । अनेक भारतीय व पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने आज चिकित्सा क्षेत्र में और स्वास्थ्य प्राप्ति में योग की भूमिका को सराहनीय माना है।

यदि महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र को देखा जाये तो वहाँ पतंजलि चित्त को विकृत करने वाले अन्तरायों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि–व्याधि,

स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांतिदर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अवस्थितत्त्व ये नौ चित्त को विक्षिप्त करने वाले अन्तराय (विघ्न) है।[8] आगे कहा है कि दुःख, दौर्मनस्थ, अंगों का कांपना और बिना इच्छा के श्वास–प्रश्वास ये पाँच साथ में उपस्थित हो जाते हैं।[9] अब यदि विचार कर देखा जाये तो यहाँ, पतंजलि ने व्याधि को सब से प्रथम विघ्न के रूप में गिनाया है जिसमें शारीरिक व मानसिक सभी प्रकार की बीमारियां आ जाती है। जब पतंजलि इनके निवारण की बात कहते हैं तो यह कहते हैं कि चित्त के विक्षेपों को दूर करते ही ये सारे विघ्न भी दूर हो जाते हैं अर्थात् शरीरिक व मानसिक सभी बीमारियां चित्त के निर्मल होते ही दूर हो जाती है।

इन सभी के निवारण के लिए पतंजलि यहाँ आठ सूत्र देते हैं । प्रथम सूत्र में वे कहते हैं कि इनके निवारण के लिए एक तत्त्व का दृढ़ अभ्यास करना चाहिये।[10] द्वितीय में कहते हैं कि मैत्री, करूणा, मुदिता और उपेक्षा इन चार प्रकार की भावनाओं का पालन क्रमशः सुखी, दुःखी, पुण्यशाली और पापी मनुष्यों के प्रति करना चाहिये।[11] तीसरे सूत्र में कहते हैं कि श्वास को बाहर फेंक कर बाहर ठहराना चाहिए अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।[12] इसी प्रकार आगे के सूत्रों में पतंजलि ज्योतिध्यान[13], वीतराग पुरूषों के चित्त का ध्यान[14] स्वप्न – निद्रा की वृत्ति का सहारा लाना बताते हैं[15] और आठवे सूत्र में तो सबसे आसान बात कहते हैं कि जो भी आपके अभिमत हो उसका ध्यान करे[16] आपके चित्त के विक्षेप दूर हो जायेंगे। ध्यान के अभ्यास से हमारा चित्त (मन) निर्मल होता है और चित्त के निर्मल होते ही हमारी व्याधियां भी दूर हो जाती है। पतंजलि ने योग सूत्र में चित्त की निर्मलता के लिए इनके अतिरिक्त अभ्यास, वैराग्य, क्रियायोग, अष्टांग योग आदि साधनों का भी वर्णन किया। अष्टांग योग के यम[17], नियम[18] का पालन किया जाये तो हमारा मन तनाव से मुक्त होता है और सभी जानते हैं कि तनाव से युक्त मन ही बीमारियों का कारण होता है और तनाव से मुक्त मन स्वास्थ्य प्राप्ति का कारण होता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यदि हम योग मनोविज्ञान को भलीभांति जान लें और फिर योग द्वारा बताये गये साधनों से अपने चित्त को निर्मल कर लें तो समग्र स्वास्थ्य को प्राप्त कर सकते हैं।

– डॉ. मीरा त्यागी C/o डॉ. सुरेन्द्र कुमार त्यागी
म.नं. 21, बड़ा परिवार, गुरुकुल कांगड़ी
युनिवर्सिटी हरिद्वार–249404
मोबा. 9897173154

संदर्भ :

1. डॉ. मीरा त्यागी, असिसटेंट प्रोफेसर तदर्थ, कन्या गुरूकुल परिसर, हरिद्वार। Email& meera-tyagi@gkv-ac-in
2. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (योगदर्शन 1/2)
3. श्वृत्तयः चित्त परिणाम विशेषाः । (योगसूत्र व्यासभाष्य1/2)
4. धैतिर्वस्तिस्तथानेतिलौलिकि त्राटकं तथा। कपालभांतिश्चौतानि पटकर्मानि समाचरेत।। (घेरण्ड संहिता 1/12)
5. श्घेरण्ड संहिता 2/3–6
6. संहितः सूर्यभेदश्च उज्जायीशीतली तथा। भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छाकेवली चाप्टकुम्भकाः ।। (घेरण्ड संहिता 5/45)
7. स्थूलं ज्योतिस्तथासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः । (घेरण्ड संहिता 6/1)
8. श्व्याधिस्त्यान संशयप्रमादऽऽलस्याऽविरति भ्रान्तिदर्शनाऽलब्धभूमिकत्वाऽनवस्थित्वानि चिन्तविक्षेपास्तेऽन्तराया । (योगसूत्र 1ध्30)
9. श्दुखदौर्मनस्याऽगमेज्ज्ञयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः । (योगसूत्र 1/31)
10. तत्प्रतिपेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः। (योगसूत्र 1/32)
11. मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविपयाणां भावनातस्चित्तप्रसादन् ।(योगसूत्र 1ध्33)
12. प्रच्छर्दन विचारणाभ्यां वा प्राणस्य। (योगसूत्र 1/34)
13. विशोका वा ज्योतिष्मती। (योगसूत्र 1/36)
14. वीतराग विपयं वाचित्तं । (योगसूत्र 1/37)
15. श्स्वप्ननिद्मज्ञानालम्बनं वा । (योगसूत्र 1/38)
16. श्यथाभिमत ध्यानाद्वा । (योगसूत्र 1/39)
17. अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः। (योगसूत्र 2/30)
18. शौचसन्तोपतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (योगसूत्र 2/32)

इलेक्ट्रिक व्हीकल्स : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

– राकेश मोखरा
– कविता ए. जैन

1. सार – प्रदूषण वर्तमान में बहुत बड़ी समस्या बनती जा रही है। इस साल भारत के कई शहरों में वायु गुणवत्ता सूचकांक रेड जोन में पहुंच गया है। वायु प्रदूषण में हो रही इस वृद्धि की वजह से लाखों लोगों को गंभीर स्वास्थ्य खतरों से जूझना पड़ता है। दिल्ली से जुड़ी रिसर्च, अर्बन एमिसन के अनुसार, शहरी धुंध में पी. एम 2.5 प्रदूषण है, जो कि परिवहन और निर्माण क्षेत्र की वजह से बढ़ रहा है। पराली पर हल्ला ज्यादा रहता है, लेकिन अलग– अलग स्टडी में सामान्य दिनों में प्रदूषण का सबसे बड़ा फैक्टर वाहन ही पाए गए हैं। वाहनों के धुंए का प्रदूषण में 20% योगदान है। अब ईवी की बढ़ती रफ्तार ही प्रदूषण पर मार करने में सक्षम होगी। लोगों के बीच इलेक्ट्रिक गाड़ियों का क्रेज बढ़ रहा है। दुनिया ईवी (इलेक्ट्रिक व्हीकल) की तरफ तेजी से बढ़ रही है, पर देश में इनकी रफ्तार सुस्त है। देश में कुल वाहनों के मुकाबले 1% भी ईवी नहीं हैं।

कीवर्ड – प्रदूषण, ईवी, परिवहन

2. परिचय– 2030 तक भारत अपने अत्यधिक तेल आयात को कम करने का लक्ष्य बना रहा है और आने वाले वर्षों में शहरों में प्रदूषण के स्तर पर अंकुश लगेगा। इसे हासिल करने में इलेक्ट्रिक वाहन महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। उपभोक्ताओं द्वारा ईवी को अपनाने व इसके प्रति समझ के लिए विश्व स्तर पर कई अध्ययन किए गए हैं। उपभोक्ताओं को प्रभावित करने वाले कारकों में ईवी की लागत, प्रति चार्ज ड्राइविंग दूरी, बैटरी को रिचार्ज करने का समय, चार्जिंग पॉइंट की उपलब्धता और बैटरी की लागत शामिल है, जो कि उपभोक्ताओं की वरीयता को काफी प्रभावित करते हैं। प्रौद्योगिकी किसी वाहन की तकनीकी विशेषताओं को संदर्भित करती है। ईवी की ऊंची कीमत तथा बैटरी को पूरी तरह चार्ज करने पर तय की गई कम दूरी, ईवी को अपनाने में सबसे बड़ी बाधा है। उपभोक्ताओं की सोच उपलब्ध चार्जिंग अवसंरचना पर ध्यान केंद्रित करती हैं। पर्याप्त चार्जिंग सुविधाओं से समय और फ्यूल लागत की बचत होगी, तभी, उपभोक्ताओं की क्रयशक्ति यानी रेंज संबंधी चिंता का समाधान हो सकेगा । लोगों में ईवी के प्रति जागरूकता लाने हेतु सरकार को कर कटौती या छूट से संबंधित कुछ नीतियों को दृढ़ता से समर्थित करना पड़ेगा। किंतु वित्तीय प्रोत्साहन के साथ–साथ कुछ गैर वित्तीय प्रोत्साहन जैसे मुफ्त पार्किंग और टोल कटौती आदि सुविधाएं देकर ईवी खरीद के प्रति लोगों को और अधिक आकर्षित किया जा सकता है।

3. अनुसंधान पद्धति–यह अध्ययन मुख्य रूप से वर्णनात्मक है। इसका विश्लेषण मुख्य रूप से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय साहित्य से किए गये स्रोतों पर आधारित है। यह द्वितीयक डेटा विभिन्न वेबसाइटों, सर्वेक्षणों, शोध–पत्रों, लेखों, पत्रिकाओं और सरकार द्वारा प्रकाशित रिपोर्टो से लिया गया है ।

4. अनुसंधान सीमा–मेरे द्वारा किए गए अध्ययन के विश्लेषण की सटीकता द्वितीयक डेटा पर निर्भर करती है।

5. अध्ययन के उद्देश्य–

- भारत की वाहन इंडस्ट्रीज में इलेक्ट्रिक मोबिलिटी के विकास की समीक्षा करने हेतु।
- इलेक्ट्रिक वाहन के विनिर्माण के लिए एक प्रभावशाली पारिस्थितिकी तंत्र बनाने के लिए सुझाव देने हेतु ।

6. ईवी की मुख्य हाइलाईट्स, जो आत्मनिर्भरता की तरफ समावेशी कदम होगा–भारत में इलेक्ट्रिक वाहन बाजार का विस्तार होना तय है, सरकार भी इसके लिए महत्वाकांक्षी योजनाएँ चलाकर इसकी पहल कर रही है । भारत अपने अत्यधिक तेल आयात को कम करने का लक्ष्य बना रहा है, इसके लिए ईवी इंडस्ट्रीज को सरकार ने प्रोत्साहन देने के लिए कई कदम उठाए हैं । इलेक्ट्रिक वाहनों को बढ़ावा देने के लिए एक बुनियादी चार्जिंग ढाँचा तैयार कर रही है। जिससे तेल आयात को कम किया जा सकेगा, जो कि आत्मनिर्भर भारत बनाने के

लिए अहम कदम होगा।

7. ईवी की विशेषताएं–

- इलेक्ट्रिक व्हीकल्स से कोई ध्वनि प्रदूषण नहीं होता ।
- ईवी का वायु प्रदूषण में 0% योगदान है।
- ईवी की रिपेयरिंग व मेनटेनिंग कोस्ट सस्ती है।
- ईवी इको फ्रेंडली है।

8. इलेक्ट्रिक मोबिलिटी को बढ़ावा देने के लिए सुझाव–

- सभी राज्यों की सरकारों को चार्जिंग के लिए सोलर पावर बेस्ड चार्जिंग स्टेशंस पर फोकस करना चाहिए, तभी पॉल्यूशन रोकथाम के लिए बड़ा फायदा होगा।
- उन्नत रसायन सेल (एसीसी) विनिर्माण के लिए उत्पादन–संबद्ध प्रोत्साहन (पीएलआई) स्कीम का दायरा बढ़ा देना चाहिए इसके बिना पूर्ति व मांग में संतुलन संभव नहीं है।
- केंद्र को ईवी पर लगने वाले जीएसटी रेट में कमी करनी चाहिए ।
- बैटरी चालित वाहनों को हरी लाइसेंस प्लेटें देकर परिमिट को गैर जरूरी कर देना चाहिए।
- राज्यों को ईवी पर टोल में छूट देनी चाहिए ताकि लोग ज्यादा ईवी खरीदें ।

9. निष्कर्ष : अर्थव्यवस्था, सामाजिक स्थिति, प्रौद्योगिकी के मानक तय करने में जागरूकता एक महत्वपूर्ण पहलू है। भारत में ईवी को बहुत कम अपनाया गया है और अधिकांश लोगों के पास ईवी को संभालने का अनुभव नहीं है।ईवी को अपनाने में अन्य बाधाएँ जैसे ईवी की अनुपलब्धता, अधिक विक्रय मूल्य और ईवी मॉडल की कमी भी है। किंतु यह भी सत्य है कि आंतरिक दहन इंजन चालित वाहनों की तुलना में ईवी की परिचालन लागत कम है । जैसे–जैसे ईवी के बारे में जागरूकता बढ़ रही है, लोगों में ईवी के प्रति रुझान बढ़ता जा रहा है।

- RAKESH MOKHRA
Research Scholar,
PTNRS Govt. College, Rohtak, (Haryana)
Mob. 9813091403
- KAVITA A. JAIN
Professor, Baba Mastnath University,
Rohtak, Haryana

संदर्भ :

- www.danikbhaskar.com
- www.thehindu.com
- https://e-amrit.niti.gov.in/benefits-of-electriwc-vehicles
- research gate/ Satyendra Pratap Singh Indian Institute of Technology (Banaras Hindu University) Varanasi
- www.evreporter.com
- https://vahan.parivahan.gov.in/nrservices/
- www.haryana.gov.in
- www.india.gov.in

दलित राजनीतिक चेतना के अभ्युदय में सोशल मीडिया की भूमिका

– डॉ. अनुपम चतुर्वेदी

17 जनवरी 2016 को हैदराबाद विश्वविद्यालय के पीएचडी स्कॉलर रोहित वेमुला की आत्महत्या के अगले ही दिन भारत के कई विश्वविद्यालयों एवं अन्य जगहों पर इस आत्महत्या को संस्थागत हत्या करार देते हुए छात्रों की भीड़ जुटी और रोहित वेमुला के साथ हुए अन्याय के खिलाफ ये प्रतिक्रिया बहुत तीव्र गति से देश भर में फैल गयी। 29 मार्च 2016 को राजस्थान के बीकानेर जिले के नोखा में एक दलित कन्या डेल्टा मेघवाल की संदिग्ध परिस्थितियों में लाश मिलती है। इस बात कि पूरी संभावना थी कि इस घटना को दबा दिया जाता था केस को कमजोर कर दिया जाता । परन्तु घटना के तुरन्त बाद विभिन्न शहरों यहां तक कि दक्षिण भारत के शहरों में भी दोषियों को पकड़ने के लिए प्रदर्शन हुए जिसके कारण घटना का दबाना संभव नही हो सका । अनुसूचित जाति जनजाति एक्ट के कुछ प्रावधानों को कमजोर करने के खिलाफ 2 अप्रेल 2018 को भारत बंद का जो आह्वान किया गया वह बिना

किसी केन्द्रीय नेतृत्व के स्वतः स्फूर्त बंद था जो असाधारण रूप से सफल रहा। ये सभी मामले स्पष्ट संकेत करते है कि दलित अत्याचारों एवं दलित महत्व के मामलों से सम्बद्ध खबरों को इस देश में दबाया या छुपाया नही जा सकता। इन सब आन्दोलनों का ही असर था कि अंततः रोहित वेमुला मामले में कई गिरफ्तारियाँ हुई। केन्द्रीय मंत्री की मानव संसाधन मंत्रालय से विदाई को भी इसी मामले से जोडकर देखा गया। एससी–एसटी एक्ट एससी से जुड़े मामले में केन्द्रीय सरकार को बैकफुट पर आना पड़ा।

इन सब घटनाओं को समुचित महत्व मिलने का एक प्रमुख कारण दलित, वंचित समूह में सोशल मीडिया का प्रयोग रहा। मुख्य धारा के मीडिया से तो दलित वर्ग विशेष उम्मीद नही रखता है लेकिन सोशल मीडिया के उभार के साथ दलित अस्मिता का उभार हुआ है। सोशल मीडिया के प्रभाव के कारण ही मुख्याधारा का मीडिया भी इस वर्ग को कवरेज देने के लिए मजबूर हुआ है। मुख्यधारा के मीडिया में दलितों की हिस्सेदारी बहुत ही कम रही है। आजादी के बाद इतने लम्बे समय तक एक बड़े वर्ग की लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ तक पहुँच न पाना बहुत बड़ी विडम्बना है । आक्सफेम इंडिया न्यूजलाण्ड्री की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय मीडिया के उच्च पदों पर 90 प्रतिशत उच्च जाति के लोग बैठे है । राष्ट्रीय मीडिया के 315 सबसे अधिक प्रभावशाली लोगों में कोई दलित नहीं है। बड़े न्यूज चैनलों के एंकरों में दलित समुदाय का प्रतिनिधित्व नगण्य है। प्रिंट मीडिया में भी बड़े अखबारों के मालिक और सम्पादक गैर दलित ही है मुख्यधारा के मीडिया ने दलित मुद्दों को कभी प्राथमिकता नहीं दी क्योंकि हमारे समाज में जैसे कठोर जाति पदानुक्रम है मीडिया और पत्रकार भी उसी मानसिकता के आधार पर काम करते है। लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ जातीय भेदभाव के दबाव में झुक चुका है। जबकि उसे न्याय की मशाल को पकड़कर सीधा खड़ा होना चाहिए। मुख्यधारा का मीडिया गरीबो, पीड़ितो व दलितों के लिए नहीं है। मुख्यधारा का मीडिया उन चीजों को महत्व देता है जो वास्तव में गैर समाचार है। हाथ से मैला ढोने की प्रथा, स्कूल में दलितों के साथ भोजन संबंधी भेदभाव, दलितों पर अत्याचार की खबरे, पहले पन्ने की खबरे नहीं बनती है। इन परिस्थितियों में दलित वर्ग यदि मुख्यधारा के मीडिया से विमुख होकर सोशल मीडिया की ओर उन्मुख हो रहा है तो इसमें कोई आश्चर्य नही होना चाहिए।

वर्तमान में दलित वर्ग के अनेक सोशल मीडिया मंच सामने आ रहे हैं। अब इनके स्वयं के सोशल स्वयं मीडिया मंच है, स्वयं के पत्रकार एवं सम्पादक है, स्वयं के मुद्दे है। इनमें से कुछ सोशल मीडिया प्लेटफार्म की पहुंच करोड़ों लोगों तक हो गई है।

तालिका 1.1 (भारत में प्रमुख दलित यूटयूब चैनल एवं प्रसार संख्या)

क्र.स.	यू–टयूब चैनल	चैनल प्रारम्भ तिथि की	दशकों संख्या (लाखो में)
01	नेशनल दस्तक	2015	80.6
02	नेशनल इंडिया न्यूज	2017	20.4
03	आवाज इंडिया टीवी	2013	19.1
04	दलित दस्तक	2012	11.0
05	एस एम न्यूज	2015	9.1

सोशल मीडिया के विभिन्न साधनों जैसे यूट्यूब चैनल, व्हाट्सएप्प ग्रुप, फेसबुक, ट्वीटर, इंस्टाग्राम का धीरे–धीरे प्रयोग दलित वर्ग में बढ़ने लगा है और अब इस माध्यम के बढ़ते प्रयोग ने दलित वर्ग में राजनीतिक चेतना में अभिवृद्धि की है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि दलित वर्ग से सम्बन्धित सोशल मीडिया चैनल्स आने वाले दिनों में मुख्य धारा के चैनलों की प्रसार संख्या को पीछे छोड़ देंगे। सांख्यिकी आंकड़ों के रूप में देखे तो भारत की लगभग 46 करोड़ आबादी सोशल मीडिया मंचों का उपयोग करती है। इसमें एससी, एसटी की आबादी के अनुपात से देखे तो लगभग 10 करोड़ अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जन जाति के लोग सक्रिय रूप से सोशल मीडिया मंचों पर उपस्थित है। ये आंकड़े ही दलितों के लिए सोशल मीडिया की उपयोगिता को रेखांकित करते हैं।

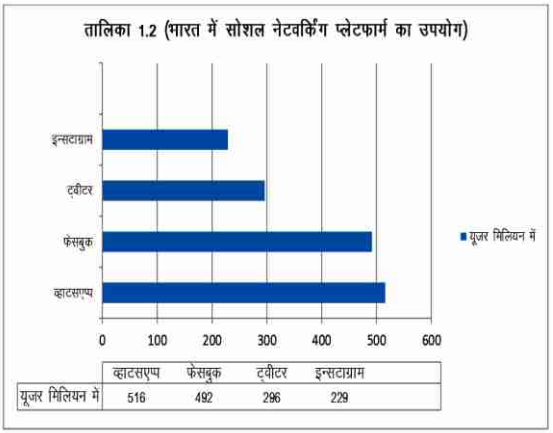

दलितों में सोशल मीडिया के उभार से उत्पन्न स्वतः स्फूर्त राजनीतिक चेतना को कुछ विचारक मिलियन म्यूटीनिज की अवधारणा से जोड़कर भी देखते है। उनका मानना है कि ये इसका मूल स्वर है दलित मुद्दे, दलित आवाज, दलित अस्मिता अर्थात् ये मिलियन म्यूटीनिज अंततः एक वृहत्तर लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर होती है।

सोशल मीडिया पर दलितों की राजनीतिक चेतना, अस्मिता एवं मुद्दों के सफल होने का कारण यह है कि एक तो सोशल मीडिया की पहुँच मुख्यधारा के मीडिया से व्यापक है और इसी व्यापकता के कारण सोशल मीडिया ही भविष्य में मुख्याधारा का मीडिया बन जाएगा। सोशल मीडिया ने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में जो दलितों के साथ भेदभाव किया जाता था उसमें गैर–बराबरी को दूर करने का प्रयास किया है क्योंकि इसमें कोई चौकीदार नहीं है, कोई रोकने वाला या प्रगति को थामने वाला नहीं है।

कुछ समय पूर्व मुख्यधारा की मीडिया ही यह तय करती थी कि किस रिपोर्ट को प्राथमिकता देनी है। लेकिन सोशल मीडिया ने एडिटर मुक्त व्यवस्था को जन्म दिया है जिसमें वह सामूहिक संचार और संवाद का यथार्थ और लोकतांत्रिक मंच बनकर सामने आया है। छोटे से छोटे गांव से लेकर महानगरों तक दलित समुदाय के बीच चेतना आ रही है। सोशल मीडिया ने देशभर के दलितों को उत्पीड़न के खिलाफ एक नई संचार की भाषा दी है।

अंत में इस तथ्य को रेखाकिंत करना महत्वपूर्ण है कि दलितों में सोशल मीडिया द्वारा जो राजनीतिक चेतना आयी है उसका सबसे सुखद पहलू यह है कि ये अधिनायकवादी दलित राजनैतिक चेतना न होकर लोकतांत्रिक दलित राजनैतिक चेतना है अर्थात् दलित चेतना के पार्श्व में कोई सुस्थापित संगठन, सुस्थापित शक्ति या सुस्थापित दलित व्यक्तित्व का होना अनिवार्य नहीं है। यह प्रायः स्वतः स्फूत स्वचेतन राजनीतिक चेतना है। किसी संस्थागत प्रतिबद्धता से मुक्त, यह पूर्णत स्वस्थ, ईमानदार और परिपक्व राजनैतिक चेतना है जो निःसन्देह ही दलित हितों का संधान करेगी।

– डॉ. अनुपम चतुर्वेदी
सह आचार्य–राजनीति विज्ञान
राजकीय बांगड़ महाविद्यालय, पाली–306401
(राज.) मोबा. 7023488994

संदर्भ :

1. मुख्य धारा की मीडिया के मायनें
   fowardpress - in/2019 (accessed on 15 July 2023)
2. No dalit] Adviasi or obc heads] Indian main strem media decanherald] 14 october] 2022
3. https://www-the aloblstatistics.com
   (accessed on 20 July 2023)
4. मीडिया में दलित हिस्सेदारी ?
   प्रवक्ता.कॉम (देखा गया 25 जुलाई 2023)
5. social media] dalits and Politics of presence : An Analysis of the presence of dalit Voices in the Indian media] Author Nitish Kumar] sprf-in social media (accessed on 1 Aug] 2023)
6. दलितों – वंचितों को संगठित कर रहा है इन्टरनेट और सोशल मीडिया hindi, the print in (accessed on 21 Augest] 2023)

मासिक पत्रिका ''आश्वस्त'' के स्वामित्व एवं अन्य विवरण
फार्म –4 (नियम 8 देखिए)

1.	प्रकाशन स्थल	:	'आश्वस्त' 20, बागपुरा, सांवेर रोड उज्जैन (म.प्र.)
2.	प्रकाशन अवधि	:	मासिक
3.	मुद्रक	:	पिंकी सत्यप्रेमी
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	'आश्वस्त' 20, बागपुरा, सांवेर रोड उज्जैन (म.प्र.)
4.	प्रकाशक	:	पिंकी सत्यप्रेमी
	पता	:	उपरोक्तानुसार
5.	संपादक	:	डॉ. तारा परमार
	नागरिकता	:	भारतीय
	पता	:	9–बी, इन्द्रपुरी, सेठीनगर, उज्जैन
6.	पत्रिका का स्वामित्व	:	भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश ''आश्वस्त'' 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन

उस व्यक्ति संस्था के नाम जो समाचार–पत्र के स्वामी हो तथा जो समस्त पूंजी के 1 प्रतिशत के साझेदार या हिस्सेदार हो ।

मैं पिंकी सत्यप्रेमी एतद् द्वारा घोषित करती हूं कि उपरोक्त समस्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

हस्ताक्षर
पिंकी सत्यप्रेमी
प्रकाशक

मार्च 2024

दलित शब्द की कीवर्ड के रूप में पुनर्कल्पना व विश्लेषण

– सौरभ कुमार
– सृष्टि श्रीवास्तव

सारांश : दलित शब्द एक कीवर्ड (संकेत शब्द) की तरह दलित चेतना के संघर्षों को समझने में सामजिक और राजनितिक मायने रखता है। यह शोध पत्र दलित पहचान के बहुआयामी स्वरुप और समकालीन समाज में इसके उभरते महत्व पर रोशनी डालता है व उत्पीड़क की जाति चेतना और उत्पीड़ित की दलित चेतना के बीच द्वंद्व को समझता है। दलित आंदोलन के ऐतिहासिक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, अपने निष्कर्ष में यह शोध पत्र दलित चेतना को सामाजिक परिवर्तन और मुक्ति संघर्ष के एक माध्यम के रूप में समझने के महत्व पर जोर देता है।

कीवर्ड–दलित, पहचान, चेतना, जाति, जाति आधारित भेदभाव, दलित आंदोलन।

परिचय : कीवर्ड के माध्यम से, किसी विशेष समय और स्थान के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिदृश्य, और समाज की शक्ति संरचनाओं को समझा जा सकता है। कीवर्ड, भाषा से जुड़ी जटिलता और समाज के साथ उसके संबंधों के बारे में भी जानकारी देते हैं। यह शोध–पत्र रेमंड विलियम्स की कीवर्ड को लेकर समझ के जरिये, भारत में दलितों के संघर्षों और आकांक्षाओं को समाहित करते हुए, दलित कीवर्ड के बहुआयामी पैमानों को समझाता है। विलियम्स के अनुसार कीवर्ड में सक्रिय शब्दावली के तत्व हैं, जिसका किसी भी अर्थ को किसी विशेष सन्दर्भ में समझने, विवेचन करने और प्रस्तुत करने का अपना तरीका होता है (विलियम्स xxvii) ।

भारत में जाति–आधारित भेदभाव व्यापक समस्या रही है जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव दलित समुदाय पर पड़ा है। इस व्यवस्था ने 'नीच जाति माने

जाने वालों के लिए उत्पीड़न और सीमांतीकरण की स्थिति बनाई हुई है। दलितों को सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक भेदभाव का सामना करना पड़ा है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार सिर्फ साल 2021 में हर घंटे दलितों के खिलाफ कम से कम छह अपराध दर्ज किए गए। इस तरह के चौंकाने वाले आंकड़े बताते हैं कि जाति–आधारित भेदभाव और बहिष्कार के खिलाफ लड़ाई अभी लंबी है।

दलित चेतना और दलित शब्द : दलित चेतना दलितों के अनुभवों और संघर्षों पर उनकी सामूहिक समझ है, जिसे दलित शब्द एक कीवर्ड के रूप में परिभाषित करता है। इसमें दलित समुदाय पहचान मात्र से परे जाकर, अनुभवों के विविध रूप को शामिल किया जा सकता है। यह वैश्वीकृत समाज में उत्पीड़क और उत्पीड़ित की जाति चेतना के बीच एक द्वंद्वात्मक रिश्ते को दर्शाता है। यहां वैश्विक दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है, क्योंकि जाति आधारित भेदभाव अब केवल भारत तक ही सीमित नहीं है, बल्कि दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पहुंच चुका है। इस संबंध में आंबेडकर ने 1916 में अपने एक भाषण में चेतावनी भी दी थी।

उत्पीड़क की चेतना को दर्शाने वाले जातिगत भेदभाव के कई मामले दक्षिण एशियाई प्रवासियों के बीच दर्ज किए गए हैं। साल 2010 में ब्रिटेन सरकार की एक रिपोर्ट में शिक्षा, कार्यस्थल और स्वास्थ्य सेक्टर में जाति आधारित भेदभाव के पर्याप्त सबूत मिले। इसी प्रकार 2020 में, अमरीकी कंपनी 'सिस्को' में एक भारतीय दलित कर्मचारी ने अपने साथ हुए जातीय भेदभाव को सामने रखा जिसमें ऊँची जाति से आने वाले भारतीय प्रबंधकों ने उन्हें बराबर वेतन व अवसरों से वंचित रखा (खंडेलवाल)। संयुक्त अरब अमीरात, सऊदी अरब और कतर जैसे देशों में दक्षिण एशियाई प्रवासी श्रमिकों के बीच जाति आधारित भेदभाव के कई मामले दर्ज किये गए हैं। इन उदाहरणों से साफ दिखता है कि जाति–आधारित भेदभाव भारत की सीमाओं के बाहर भी अपनी जड़े बना चुका है इन घटनाओं में ऊंची जाति के लोगों की जाति चेतना साफ दिखती है।

दलित शब्द की उभरती परिभाषाएं और दलित चेतना : बीते दशकों में दलित शब्द की परिभाषा और महत्व में बड़ा बदलाव आया है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि उत्पीड़ित समुदाय दलित चेतना व शोषण के ढांचे को खुद कैसे देखता है। शरणकुमार लिंबाले दलित चेतना को ''दासता से मुक्ति से प्रेरित एक क्रांतिकारी चेतना'' के रूप में समझते हैं (लिंबाले 76–77)। दलित चेतना उच्च जातियों की जाति चेतना के उलट है इसलिए, यह एक परिवर्तनकारी चेतना है। आंबेडकर ने खुद अपने कई भाषणों में दलित शब्द का इस्तेमाल किया और अपनी पत्रिका 'बहिष्कृत भारत' में 'दलित' शब्द पर व्यापक स्पष्टीकरण दिया है। इसके अलावा, पहली शिक्षित पीढ़ी के दलितों ने 1960 के दशक में उभरते दलित साहित्यिक आंदोलन के मुखपत्र 'अस्मितादर्श' में इसे फिर से परिभाषित किया। 1973 में, 'दलित पैंथर्स संगठन' के मेनिफेस्टो ने इस परिभाषा को और व्यापक बनाया और इसमें सभी शोषित लोगों और आंदोलन के सहयोगियों को भी शामिल किया (भारती) इसके बाद यह शब्द देश भर में सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहचान का प्रतीक बन गया है।

दलित शब्द एक कीवर्ड के रूप में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक संस्थानों के अंदर ताकत के स्रोत की पहचान करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हालांकि 1990 के दशक में और विशेष रूप से मंडल आयोग की रिपोर्ट के बाद, कई सामाजिक और राजनितिक वैज्ञानिकों ने दलित समुदाय को दर्शाने के लिए सरकारी शब्दावली यानी अनुसूचित जाति का उपयोग करना शुरू किया। इसके अलावा बहुजन समाज पार्टी के उदय के साथ ही बहुजन शब्द भी

प्रचलित हुआ है।

साल 2018 में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने सरकारी तंत्रो द्वारा दलित शब्द के प्रयोग पर रोक लगाईं और इसकी जगह संवैधानिक शब्दावली (अनुसूचित जाति) का इस्तेमाल करने की सलाह दी है। इसको सरकार द्वारा दलित समुदाय को अपने लिए नाम चुनने के अधिकार से वंचित करने के एक प्रयास के रूप में समझा जा सकता है। इसका यह भी अर्थ है कि सरकार असहमति की भाषा के प्रयोग को सेंसर करना चाहती है।

व्यापक धारणा है कि दलित साहित्य केवल जाति शोषण के अनुभव के बारे में है, जबकि दलित लेखक इसे विद्रोह, वेदना और असहमति का साहित्य बताते हैं (बागुल ix)। साहित्य की इस व्याख्या को दलित कविता ने बेहतरीन तरीके से समझाया है, जो रोजमर्रा के परिश्रम से निकली है और उत्पीड़ित लोगों की सामूहिक चेतना को दर्शाती है।

निष्कर्ष : कीवर्ड के रूप में दलित शब्द जातिगत भेदभाव, सामाजिक न्याय पर बातचीत, और समावेशी नीतियों की आवश्यकता स्थापित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। आज के समय में दलित शब्द यह याद दिलाने का काम करता है कि कानूनी संरक्षण और नीतियों के बावजूद, दलितों के प्रति भेदभाव और सामाजिक असमानता की स्थिति बनी हुई है। दलित चेतना ने बार–बार अपने अधीनता के सभी पहलुओं पर सवाल उठाने की कोशिश की है और हमेशा एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाए रखा है। निष्कर्षस्वरूप दलित शब्द एक सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण कीवर्ड है

- Sourabh Kumar,
Assistant Professor
Centre for Languages and Communication
SGT University, Gurugram (Haryana)
Mob. 9540686275

- Srishti Srivastava
PhD. Scholar, Women's and Gender Studies,
Dr. B. R. Ambedkar University, Delhi

संदर्भ :

अम्बेडकर, बी.आर. डॉ बाबासाहेब अम्बेडकर : राइटिंग एन्ड स्पीचेस भाग 1. नई दिल्ली : डॉ. अम्बेडकर फाउंडेशन, सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय, भारत सरकार, 2014. प्रिंट

बागुल, बाबुराव वेन आई हिड माई कास्ट. नई दिल्ली : स्पीकिंग टाइगर पब्लिशिंग प्राइवेट लिमिटेड, 2018. प्रिंट

भारती, सुनीता रेड्डी. 'दलित : ए टर्म एजर्टिंग यूनिटी.' इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 19 अक्टूबर 2002, https://www-epw-in/journal/2002/42-

खंडेलवाल, मीना. दलित वूमेंस एजुकेशन एंड करियर ऐसपिरेशनस इन ग्लोबल कॉन्टेक्स्ट : नैरेटिव ऑफ स्ट्रगल एंड सक्सेस. इंटरनेशनल रिव्यू ऑफ क्वालिटेटिव रिसर्च, 12(3), 263–282.)

लिंबाले, शरणकुमार ट्वर्ड्स एन एस्थेटिक ऑफ दलित लिटरेचर : हिस्ट्रीस, कंट्रोवर्सीस एंड कंसीड्रेशनस. नई दिल्ली : ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2010. प्रिंट.

विलियम्स, रेमंड. कीवर्ड्स : ए वोकेब्लरी ऑफ कल्चर एन्ड सोसायटी. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,

मध्यप्रदेश की अनुसूचित जाति एवं जनजातियों की बालिकाओं की शैक्षिक, व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याओं का अध्ययन

– डॉ. शिखा बनर्जी

शिक्षा एक ऐसा उपकरण है जो न केवल जनजातियों के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए उत्तरदायी है बल्कि जनजातीय समुदायों को आंतरिक शक्ति प्रदान करती है जिससे वे जीवन की विभिन्न चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम बन सके । शिक्षा अनुसूचित जनजातियों के सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियो में उन्नति के लिए एक मुख्य आधार है। शिक्षा ज्ञान संस्कृति और कौशल के संचरण मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और हमारी सभ्यता को बनाये रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अंतर्गत शिक्षा में एकरूपता लाने, सभी को शिक्षा सुलभ कराने, बुनियादी

प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता बनाये रखने एवं बालिका शिक्षा पर विशेष जोर देने की बातें शामिल की गयी थी। शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2010) का उद्देश्य 6 से 14 वर्ष आयु तक के सभी बच्चो को मुफ्त एवं अनिवार्य गुणवत्ता युक्त शिक्षा को सुनिश्चित करना है । सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को 2010 तक प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था विशेषकर अनुसूचित जाति एवं जनजाति की बालिकाओं की शिक्षा को सर्व सुलभ बनाना सर्व शिक्षा अभियान का मुख्य लक्ष्य रखा गया। 2011 के आंकड़ों के आधार पर भारत की साक्षरता दर 72.99% है। अनुसूचित जाति की साक्षरता दर 66.07% तथा अनुसूचित जनजाति की साक्षरता दर 58.96% है। मध्यप्रदेश में अनुसूचित जाति की महिला साक्षरता दर 50.6% है तथा अनुसूचित जनजाति की महिला साक्षरता दर सिर्फ 28.4% है। **मन्हविझी एवं अन्य (2020)** ने शोध में पाया कि उचित सार्वजनिक परिवहन प्रदान करना, व्यावसायिक शिक्षा, स्थिर और पर्याप्त कर्मचारी, माता–पिता द्वारा उचित देखभाल, शिक्षा प्रसार के लिए आस–पास के स्कूलों की उपलब्धता बढाई जानी चाहिए। **चौधरी (2019)** ने पाया कि बालिकाओं के साथ बालकों की तुलना में भेद किया जाता है **मजुमदार (2018)** ने शोध में पाया कि आदिवासी बच्चों के लिए विभिन्न कार्यक्रम और योजनाएं शुरू की गई हैं। **दास एवं अन्य (2016)** के अनुसार जनजाति किशोर लड़कियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति बहुत निम्न होती है। उनमें कई प्रकार की विभिन्न शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याएं पाई गई। इसके अतिरिक्त उन्होंने पाया कि किशोर बालिकाओं की स्वास्थ्य समस्याओं के समाधान हेतु कोई जागरूकता कार्यक्रम नहीं है।

शोध के उद्देश्य : 1. अनुसूचित जाति एवं जनजाति की बालिकाओं की समस्याओं का अध्ययन करना।

2. अनुसूचित जाति एवं जनजाति की बालिकाओं की शैक्षिक समस्यायों का अध्ययन करना।

शोध विधि : शोध हेतु विवरणात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही आंकड़ों की सत्यता एवं वैधता के लिए अवलोकन एवं समूह साक्षात्कार विधि का भी उपयोग किया गया है। अध्ययन हेतु मध्यप्रदेश का जिला अनूपपुर को लिया गया हैं। अनूपपुर में चार ब्लाक हैं – पुष्पराजगढ़, जैतहरी, कोतमा एवं अनूपपुर।

न्यायदर्श एवं न्यायदर्शन : न्यायदर्श हेतु माध्यमिक स्तर की कक्षा 6ठी, 7वीं और 8वीं की बालिकाओं का चयन किया जाएगा। प्रत्येक कक्षा से बालिकाओं का चयन होगा। अनूपपुर जिले के 23 बिद्यालयों में अध्ययनरत अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की बालिकाओं का चयन किया जाएगा। जिनकी कुल संख्या 267 हैं न्यायदर्श चयन हेतु संभाव्य विधि का प्रयोग किया गया है । शोध हेतु अनूपपुर जिले के चारों ब्लाक से बालिकाओं का चयन किया गया है।

शोध उपकरण : शोध हेतु स्व निर्मित अनुसूची का प्रयोग किया गया है। जिसकी विश्वसनीयता कि जांच क्रोनबेक अल्फा द्वारा 0.734 पाई गई। वैधता की जांच विभिन्न विषय विशेषज्ञों द्वारा की गई। कथन बालिकाओं की पारिवारिक, सामाजिक एवं व्यक्तिगत समस्याओं पर आधारित हैं। जो की लिकर्ट मापनी पर आधारित हैं। पांच बिन्दुओं पर आधारित मापनी को विशेषज्ञों की सलाह लेकर तैयार किया गया है ।

विश्लेषण एवं व्याख्या

बालिकाओं से अनुसूची के माध्यम से उत्तर प्राप्त किये गए हैं एवं प्रत्येक कथन का प्रत्युत्तर प्राप्त कर प्रतिशत एवं माध्य मूल्य की सहायता से कथनों का विश्लेषण किया गया।

तालिका क्रं. 4.1

कथन के अनुसार प्रतिशत के आधार पर तथ्यों का सारणीयन

क्रं.	कथन	पूर्णत : असहमत (%)	असहमत (%)	उदासीन (%)	सहमत (%)	पूर्णत : सहमत (%)	माध्य
1.	S5	13.9	23.7	6.4	19.9	36.1	3.41
2.	S7	14.3	15	6.4	24.1	40.2	3.61
3.	S8	30.5	16.5	3.8	22.2	27.1	2.99
4.	S9	72.6	9.4	3.4	6.8	7.9	1.68
5.	S11	34.6	23.3	24.4	8.6	9.0	2.34
6.	S12	40.6	10.2	14.3	16.2	18.8	2.62
7.	S13	78.6	12.0	2.6	2.6	3.8	1.40
8.	S21	11.7	5.0	1.5	20.3	60.5	4.12
9.	S22	9.4	14.3	2.6	16.5	57.1	3.98
10.	S23	1.5	3.8	5.6	15.4	73.7	4.56
11.	S24	3.8	5.3	4.1	19.2	67.7	4.42
12.	S27	42.1	27.1	3.8	5.6	21.4	2.37
13.	S28	68.8	8.3	2.6	8.3	12.0	1.86
14.	S30	28.9	8.6	4.5	13.5	44.4	3.36
15.	S31	3.4	5.6	3.4	10.2	77.4	4.53
16.	S33	15.8	24.8	14.7	12	32.7	3.21
17.	S34	13.5	16.9	10.9	23.7	35.0	3.50

कथनों की व्याख्या एवं विश्लेषण :

कथन क्र. 5 का माध्य मूल्य 3.41 पाया गया जो कि कथन के प्रति सहमत दर्शाता है तथा 36.1 प्रतिशत बालिकाओं ने चर से दूर पैदल विद्यालय आने में पूर्ण सहमति व्यक्त की तथा 19.9 प्रतिशत बालिकाओं ने सहमति व्यक्त की।

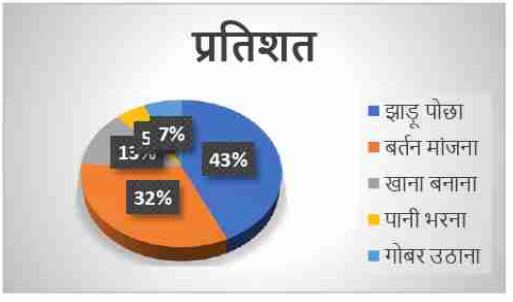

ग्राफ क्रं.4.1 : बालिकाओं का घर से दूर पैदल आने के प्रति अभिव्यक्ति का प्रतिशत **ग्राफ क्रं.4.2** बालिकाओं की घरेलू कार्यो में व्यस्तता

कथन क्र. 6 के अनुसार बालिकाएं विभिन्न घरेलू कार्यों में व्यस्त रहती हैं जिससे उनका काफी समय घरेलू कार्यों में चला जाता है। कथन क्र. 22 का माध्य मूल्य 3.98 है जो कि कथन के प्रति पूर्ण सहमति दर्शाता है। आर्थिक अभाव के कारण शैक्षिक सामग्री खरीदने में परेशानी होती है। 57.1% बालिकाओं ने पूर्ण सहमति एवं 16.5% ने सहमति प्रदर्शित की। ज्यादातर परिवार मजदूर वर्ग या कृषि कार्य में संलग्न होने के कारण परिवारों की आर्थिक आय बहुत कम है जिससे बालिकाएं अपनी जरूरतें पूरी कर पाने में असमर्थ हैं। कथन क्रं. 12 का माध्य मूल्य 2.62 हैं जो कि कथन के प्रति सहमति व्यक्त करता है। कथन क्रं. 34 का माध्य मूल्य 3.50 हैं, जो सहमत अभिव्यक्त करता है। छात्रवृत्ति में दी जाने वाली राशि पर्याप्त नहीं है

निष्कर्ष : आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण कर निष्कर्ष प्राप्त किये गए हैं । जो इस प्रकार है।

(i) बालिकाओं को विद्यालय आने से पहले घर के काम करने पड़ते है। जैसे–खाना बनाना,बर्तन मांजना, झाड़ू पोछा, पानी भरना इत्यादि । घर के कामो के कारण कभी कभी विद्यालय आने में देर हो जाती है।

(ii) बालिकाओं को घर में अपने छोटे भाई –बहनों की देखभाल करनी पड़ती हैं। जिसके कारण पढने का पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है ।

(iii) बालिकाओं को घर से दूर पैदल आना पड़ता है, घर में लडाई झगडे होने के कारण एवं घर का वातावरण अनुकूल न होने के कारण पढ़ नहीं पाती।

(iv) बालिकाएं परिवार के साथ खेती का कार्य भी करती है।

(v) बालिकाओं को पैसों की कमी के कारण परेशानी होती है । पैसों की कमी के कारण अतिरिक्त शैक्षिणिक सामग्री नहीं खरीद पाते हैं।

(vi) ज्यादातर बालिकाए कृषि एवं मजदूर परिवारों से है जो कि आर्थिक अभाव में रहते है।

(vii) बालिकाओं को छात्रवृत्ति की राशि समय पर नहीं मिल पाती है एवं छात्रवृत्ति की राशि भी पर्याप्त नहीं है।

(viii) बालिकाओं के लिए विद्यालय में पृथक शौचालय की व्यवस्था तो हैं। शौचालय में पानी और स्वच्छता सम्बन्धी समस्या है।

– **डॉ शिखा बनर्जी**
सहायक प्राध्यापक
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय,
अमरकंटक–484387 (म.प्र.) मो. 7999065147

संदर्भ :

- एक नजर में शैक्षिक आँकड़े (2018), भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, स्कूल शैक्षिक साक्षरता विभाग, सांख्यिकी विभाग, नई दिल्ली.
- चौधरी,हरिराम. (2019). ग्रामीण राजस्थान में बालिका शिक्षा। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज, 5(2) I, 893–907.
- यादव, दयाशंकर सिंह – (2016) – भारत में शैक्षिक नीतियों एवं कार्यक्रमों से महिला सशक्तिकरण –योजना,(1), 49–52.
- मानविझी एमयावरंबना, रमेश कुमार कंडासाम्य, सेल्वम मुथुसाम्यब, मणिवन्नन मणिकमक (2020) आदिवासी छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि में बाधाएं तमिलनाडु राज्य, भारत के सेलम जिले में, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ थ्योरी एंड एप्लीकेशन इन एलीमेंट्री एंड सेकेंडरी स्कूल एजुकेशन, वॉल्यूम–2, नंबर 2 अक्टूबर 2020, पीपी.121–142.
- मजूमदार, ए. (2018) भारत में जनजातीय शिक्षा की समस्याएंरू झारखंड, पश्चिम बंगाल के एक गांव से एक अध्ययन। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च एंड एनालिसिस, वॉल्यूम 01 अंक 02, 98–103.
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)
- शिक्षा का अधिकार अधिनियम (2010)
- साक्षरता की स्थिति, 2011

An Overview of Land Revenue Settlement in Jammu and Kashmir during Dogra Period (1846-1947)

- Dr. Javid Ahmad Moochi

Abstract:

The paper represents an attempt to describe the land revenue system under Dogras in Kashmir. The method of assessing and collecting revenue and the occupancy tenants were treated is the main themes of this paper. Various settlements were introduced during the dogra period in which tenants were graded into various groups. This paper also discusses the revenue system in Jammu as well as Kashmir province.

Keywords : Land Revenue, Settlements, Occupancy, Tenants.

Introduction :

Before the Dogra rule the territory now know as Jammu was split into small principalities under various chieftains, who generally recovered land revenue in Kind. However during the early days of Dogra rule (1846-1947) an attempt was made to convert the 'kind revenue into cash' and to have some sort of settlement of land revenue with the occupiers of the land. The initial settlements were rough and trash

as there was no proper preparations or compilation of records; there was no measurement and no village maps available. So, the initial revenue settlements were faulty and defective.

It was in 1890, for the first time a regular settlement was initiated under expert settlement officers and settlement commissioners from outside and cash assessments were introduce. Previously 'revenue in kind' was fixed i.e., kenkut (appraisement of standing crop). This system was succeeded by Batai, in which a definite share of the produce being taken by the state varying between 1/2, 1/3, 2/5, which was in between commuted into cash on the bases of the average grain collections of the preceding year. Batia remained most widely prevalent method of assessment throughout Gulab Singh's reign; he also tried out several other methods.[1]

In the same way in the valley of Kashmir including the old district of Muzarfarabad, the revenue was generally recovered in kind. However the first regular settlement was carried out in 1880 when cash assessment was restored to, but at the request of the 'assimis' a part of the whole revenue was in some villages fixed in kind. But, since, 1898 the revenue has always been paid in cash. The revenue was collected either directly by the government officers or through the middlemen called Kardars or Mustajirs who were influential people (being connected with feudal chiefs) and exercised unrestricted powers in the villages. In most of the cases they were also acting as headmen of the villages. These intermediaries, revenue farmers or headmen were recognised as owners of the land and the real were regulated to the position of tenants. A class of people mainly upper caste (syeds, thakurs etc) who due to the rigorous of the caste system or due to the physical infirmity were in capable of cultivating themselves. Such people gave their land for temporary cultivation to others. In this manner another system of permanent and temporary tenant system came into existence.[2]

Proprietary rights were held by the ruler and the Maharaja as the landlord considered himself to be entitled to the half of the gross produce as he perceived that he purchased Kashmir for seventy-five lakhs chilki rupees

from the British. The State's share, was however, was fixed at 30% of the gross produce but the State reserved to itself the right to realise 1/3rd of the annual or one half of the Kharif revenue of any village in kind. According to Amar Nath, land revenue was further reduced (since that first regular settlement) to 25% of the gross produce besides 12.5% of jagirdari. patwari, sanitation and road cess bringing the total revenue to 38 percent.[3]

It was in 1933 that the Maharaja Hari Singh for the first time conferred proprietary on the assimis of Kashmir province and on the occupancy tenets including 'Malguzara' and 'assimis' holding directly under the State in the Jammu province without payment of any 'Nazrana'. The levy of 'Malikana' (proprietors due) payable to the State which formerly used to be realised in excess of the land revenue at anna one per rupee but was later on merged with the land revenue. In this way Dogras divested the peasants of their proprietary rights which they had even during the Sikh and Afghan regimes.[4] Thus the land was held by his subjects in the capacity of tenants for which they were required to pay land revenue to the state as Haq-i-Malikan. If they ceased to pay the Haq-i-Malikan, they were deprived of the occupancy of the land.[5]

The non-proprietary cultivators were shown in the settlement records as having the rights of occupancy and they were placed in different categories according to the length of the possessions. These tenets were sometimes required to pay a small proprietary fee varying from 5 to 10 percent of land revenue.

In the Jammu province there were two grades of occupancy tenants, ‘Grade A' and 'Grade B' the former holding land direct from a land holder or from the State and the later holding land from the occupancy tenant of ‘grade A' and all such tenants (recorded as possessing the right of occupancy) are assigned to one of the following classes;[6]

i) Class-1: tenants whose possession of their tenancy began in or before 1871.

ii) Class-2 : tenants whose possession of their tenancy began in or after 1871 but not later than 1878.

iii) Class-3: tenants whose

possession of their tenancy began in 1878 but not later than 1893.

In the Kashmir province the occupancy tenants were assigned to one of the following classes :[7]

i) Class-1: tenants whose possession of their tenancy began in or before 1880.

ii) Class-2 : tenants whose possession of their tenancy began in or after 1880 but not later than 1894.

iii) Class-3 : tenants whose possession of their tenancy began in or after 1894 but not later than 1906.

Therefore, it goes without saying that there were significant improvements and alterations to the agricultural sector during the period under study. The implementation of land settlement under the supervision of British Indian land specialists and the adoption of specific techniques to enhance state administration did not significantly improve the lot of the peasant or ameliorate his circumstances. In rural Kashmir, the landlords remained at the top of the agrarian and social hierarchy, enjoying several privileges; this changed only after 1950's, when state legislative assembly passed a resolution on 15 November 1952, ordering that the system of 'Zaildari"[8] in the state of Jammu and Kashmir be abolished with effect from 1st Baisakh, 1953.[9]

- Dr. Javid Ahmad Moochi
Dept., of History, Amu,
Aligarh-202002 (U.P.)
Mob. 7889901627

References :

1. Showkat Ahmad Naik, Land Reform Measures in Kashmir During Dogra Rule, Indian History Congress, Part 1, Volume 21, 2011, p. 588.
2. Land Reforms in Kashmir, visit of Bihar Government officials, 30 July, 1953, state Archives Repository Srinagar.
3. D. A. Nath, Report on the Administration of Kashmir, State Archives Repository, Srinagar, Kashmir, 1905-06.
4. Showkat Ahmad Naik, Land Reform Measures in Kashmir During Dogra Rule, pp. 587-603.
5. Kashmir News Letter, Vol., II, State Information Department, Srinagar, August, 1959.
6. "File No. B-613/52, Land Reformation in Kashmir, 1953, State Archives Repository, Srinagar.
7. Ibid.
8. Zaildar was a title of landlors or zamindars of Jammu and Kashmir during Dogra period (1846-1947).
9. Letter No. 2348, from Commissioner Srinagar to tehsildars of various districts, State Archives Repository, Srinagar, 1953.

हाशिए का समाज और दलित आत्मकथाएँ

– डॉ. ओमप्रकाश सैनी (डी.लिट्)

हिंदी में आत्मकथाओं के लेखन का सिलसिला निरंतर जारी है। विगत कुछ वर्षों में हाशिए के समाज और उनसे जुड़े साहित्यकारों द्वारा लिखी गई आत्मकथाएं साहित्यिक जगत में विशेष चर्चा का विषय रही है। वस्तुतः यह ऐसी आत्मकथाएं हैं जिनमें सामाजिक सरोकारों के साथ– साथ व्यक्तिगत जीवनानुभवों से जुड़ी कटु अनुभूतियां है। जैसे–जैसे यह गुत्थियां खुलती है वैसे–वैसे समाज में सदियों से परिव्याप्त नैराश्य, अंधकार, अन्याय, अनीति, अनाचार, शोषण, उत्पीड़न भरा कुहासा छटने लगता है। हाशिए के साहित्यकारों (दलित आत्मकथाकारों) ने जीवन के जिस कटु सत्य को उजागर किया है वह कुछ हद तक आज के सभ्य सुसंस्कृत कहे जाने वाले समाज की आंख खोलने के लिए पर्याप्त है। यही कुछ कारण है कि दलित समाज की चिंताएं दूर नहीं हुई है। सच तो यह है कि वर्चस्ववादी ताकतों द्वारा लिखे गए साहित्य में साधनहीन, दुर्बल, असहाय वर्ग का चित्रण आटे में नमक (स्वादानुसार) ही हुआ है। 21वीं सदी के भारत के सामने आर्थिक विषमता, सामाजिक भेदभाव, लिंग भेद, जनसंख्या वृद्धि आदि न जाने कितनी चुनौतियां हैं। वैश्विक परिदृश्य पर नजर डालें तो कहा जा सकता है कि दलित साहित्य में इन सभी समस्याओं पर बखूबी चिंतन हुआ है। दलित चिंतको ने जाति विहीन, समतामूलक, नव–समाज के निर्माण को लेकर जो आत्मकथाएं लिखी हैं, वह बहुत हद तक दलितों के स्वानुभूत केंद्रित भोगे हुए यथार्थ की सच्ची बानगी है। नई पीढ़ी के सामने आज भी वे प्रश्न है जो आमतौर पर ग्रामीण भारत में बसे दलित, पिछड़े, गरीब, बेसहारा के सामने होते हैं। यह भी सही है कि वर्चस्ववादी मनुवादी मानसिकता के विपरीत भारत का अधिकांश दलित आज भी निर्धनता, बेकारी, जाति प्रथा, रूढ़िवादिता और भाग्यवादिता जैसी मानसिकता से घिरा है जो उसकी प्रगति में सबसे बड़ा अवरोधक है।

दलित साहित्यकारों ने अपने निजी अनुभवों को अपनी आत्मकथाओं में रेखांकित किया है। मराठी में नामदेव ढसाल से लेकर हिंदी में अस्सी–नब्बे के दशक तक अनेक आत्मकथाएं सामने आई, यह सिलसिला निरंतर जारी है। वस्तुतः यह आत्मकथाएं दलित जीवन की त्रासदी है। आजादी के बाद भी समाज का दलित वर्ग अपने मूलभूत अधिकारों से वंचित है। प्रमुख दलित चिंतक ओमप्रकाश वाल्मीकि का कहना है कि दलित को शिक्षा प्राप्ति के अधिकार से वंचित करने का षड्यंत्र रचा गया है। ये आत्मकथाएं इसे गंभीरता से उठाती हैं। दलित आत्मकथाएं दलित जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज हैं जिनका साहित्यिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन आवश्यक है। यह भी सही है कि अधिकांश प्रभुत्व वर्ग इन आत्मकथाओं को गंभीरता से नहीं लेता लेकिन विश्व समाज की नजरों में समाज के अभिन्न अंग दलितों के विषमतापूर्ण जीवन और उनकी तह में डूब उनके अभावमय जीवन का चित्रण ही पार उतरना है। वस्तुतः दलित आत्मकथाएं समाज की वेदनाजन्य अनुभूतियों की त्रासद उपज है। दलित लेखक को वर्ण व्यवस्था के नाम पर थोपी गई मर्यादाएं विरासत में मिली है। इन आत्मकथाओं में शताब्दियों की पीड़ा, निराशा, घुटन, संघर्ष और उत्पीड़न कलमबद्ध है। दलित चिंतक अस्मिता के लिए निरंतर संघर्षरत है। उनका दुख निजी न होकर सामाजिक है, यह दुख वर्णवादी व्यवस्था की देन है। वर्चस्ववादी ताकते सदैव अपना आधिपत्य बनाए रखना चाहती हैं जो प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध है। दलित चिंतक डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा दिखाए गए समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे मूल्यों में विश्वास करता है। ऐसा माना जाता है कि दलित आत्मकथाओं का मराठी में आरंभ साठ के दशक में हुआ जिसका प्रभाव आगे चलकर हिंदी में अस्सी के दशक में एक क्रांतिकारी परिवर्तन के तौर पर दिखाई देता है। हिंदी साहित्य में दलित आत्मकथाओं की एक लंबी परंपरा रही है जिनमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, "जूठन" भाग 1, भाग 2 (1997, 2013), कौशल्या बैसंत्री "दोहरा अभिशाप" (1999), सूरजपाल चौहान "तिरस्कृत'' भाग–1, भाग–2 (2002, 2006), रूपनारायण सोनकर, "नागफनी" (2007), श्योराज सिंह बेचैन, "मेरा बचपन मेरे कंधों पर" (2009), तुलसीराम, "मुर्दहिया" (2010), सुशीला टॉकभोरे, "शिकंजे का दर्द" (2011), रजनी तिलक, "अपनी जमीन अपना आसमान" (2019) विशेष उल्लेखनीय हैं। देर से ही सही दलित साहित्यकारों ने सामाजिक बदलाव की जो अलख जगाई है निसंदेह वह प्रशंसनीय है। दलित कथाकारों ने अदम्य शक्ति, साहस और शौर्य के साथ विषम सामाजिक व्यवस्था और शोषण की तरकीबों को बेनकाब किया है। जयप्रकाश कर्दम का कहना है "समाज के जिस विद्रूप, वीभत्स, क्रूर और अमानवीय चेहरे पर गैर दलित लेखक पर्दा डालते आए थे और समाज जिस सच से साक्षात्कार नहीं करना चाहता था, इन आत्मकथाओं ने समाज के उस नग्न सच को बेनकाब किया है।"[1] सन 1995 में हिंदी पट्टी के लेखक मोहनदास नैमिशराय "अपने–अपने पिंजरे" लिखते हैं। अपनी पुस्तक की भूमिका में "मैं और मेरे शब्द" में वे लिखते हैं "आत्मकथा लिखना अपनी भावनाओं को उद्वेलित करना है। अपने ही जख्मों को कुरेदने जैसा है। जीवन के खुरदरे यथार्थ से रूबरू होना है। ऐसे खुरदरे यथार्थ से जिसे हम में से अधिकांश

याद करना नहीं चाहते। इसलिए कि हमारे अतीत में बेचैनी और अभाव का हिसाब किताब होता है।" नैमिशराय शिक्षा के प्रति जागरूक थे। वे जानते थे कि शिक्षा के बगैर जीवन को जिया और जीता नही जा सकता। इसीलिए आजीवन पढ़ाई के लिए जद्दोजहद करते रहे। आर्थिक बदहाली के दौरान उन्होंने दवा के अभाव में बेटे की मौत का नजारा देखा तथा अंबेडकरवादी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। नैमिशराय की आत्मकथा निजी जीवन की निर्मम घटनाओं का क्रमवार ब्यौरा है। कथाकार 27 मई 1977 को बिहार के बेलछी में घटित सामूहिक दलित नरसंहार का उल्लेख करना कभी नहीं भूलता जहां 11 दलितों की नृशंस हत्या कर दी गई थी, इसी प्रकार उन्होंने उत्तर प्रदेश के मैनपुरी में 18 नवंबर 1981 को 24 जाटवो की सामूहिक हत्या का भी जिक्र किया है। ये ऐसी घटनाएं है जिन्हें देख सुनकर रूह कांप उठती है और अपने दलित होने पर अफसोस। डॉ.. महीप सिंह "अपने–अपने पिंजरे" को आत्मकथा न कहकर आत्मवृत्त मानते हैं। लेखक का मानना है कि यह आत्मवृत्त लेखकीय जीवन के बचपन से लेकर जवानी तक के 18 वर्षों का पीड़ामय लेखा–जोखा है। "उन्होंने अपने जीवन की उन तल्ख और निर्मम सच्चाइयों को उकेरा है जिनमें मानवीय पीड़ा अपनी पूरी सघनता के साथ व्यक्त हुई है। इसका सबसे बड़ा कारण व्यक्ति के ऊपर सड़ी–गली व्यवस्था का वह आरोपण है, जिसके प्रति वह विवश होकर सब कुछ सहते जाने के लिए अभिशप्त रहा है।"[2] स्वयं मोहन दास नैमिशराय ने कहा है कि दलित होना मनुष्यता के लिए बहुत बड़ा पाप है । वे लिखते हैं "हम लंबे समय से अपमान सहते आए थे, पर गुनहगार न थे हम। हम हारे हुए लोग थे जिन्हें आर्यों ने जीतकर हाशिए पर डाल दिया था। हमारे पास अंग्रेजों द्वारा दिए गए तगमे, मेडल, पुरस्कार न थे। हमारे पास था सिर्फ कड़वा अतीत और जख्मी अनुभव।"[3] निःसंदेह दलित समाज सदियों से शोषण की मार झेल रहा है, ये अभागे उन पूंजीपतियों की लूट का शिकार है जिन्होंने अपने वर्चस्व के लिए वर्चस्व को कुचल दिया। सदियों से मानवीय मूल्यों एवं प्राकृतिक संसाधनों से दूर, निरंतर अस्मिता के लिए संघर्षरत यह वर्ग अब जागरूक हो उठा है।

दलित उत्पीड़न को लेकर महिला लेखिकाओं ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज की है, इनमें सुशीला टाकभोरे, रजनी तिलक का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दलित लेखिकाओं मे कौशल्या बैसंत्री ने अपनी आत्मकथा में जातीय जुल्म, हिंसा, उत्पीड़न के लिए ब्राह्मणवादी कुत्सित सोच को उजागर किया है। उन्होंने सामाजिक बुराइयों यथा बाल विवाह, बहु विवाह, अनमेल विवाह और विधवा विवाह जैसी सामाजिक बुराइयों पर लिखा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने "झूठन" के माध्यम से जहां समाज के खोखलेपन को उजागर किया है वहीं गुरु शिष्य के रिश्तों में आए भेदभाव और बनावटीपन को उजागर किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि दलित साहित्य का यथार्थ बिल्कुल नया है। साहित्य में पहली बार एक नया समाज एक नई भाव भंगिमा और नए विद्रोहात्मक तेवर के साथ खड़ा हुआ है, अपने होने का अहसास जगाने के लिए, अपनी बात को ईमानदारी से कहने के लिए, आरोप है कि ऐसी बेलाग अभिव्यक्ति के लिए उसके पास पर्याप्त भाषा नही है, वस्तुतः उत्पीड़न को उग्र प्रदर्शन की दरकार रहती है, यही उसको साहस और शक्ति प्रदान करता है, फिर आखिर हो भी क्यों ? इस न समझ आने वाली पंडिताऊ भाषा ने ही तो उसके स्वर्णिम सपनों का भंजन किया है। यही कुछ कारण है जिनके चलते आमतौर पर दलित साहित्य पर शैल्पिक स्तर पर कमजोर होने का ठप्पा लगाया जाता है लेकिन क्या सच को उघाड़ने के लिए भाषा की कारीगरी जरूरी है? यह चिंतनीय है? सच को अपनी ही बोली, जनभाषा में उकेरने की शक्ति इन दलित कथाकारों में है इसमें कोई संदेह नहीं। यह भी सही है कि दलित लेखन का उद्देश्य सदियों से पीड़ित, शोषित दलितों में जन चेतना जगाना है। जातीय हिंसा, बर्बरता, गरीबी, शोषण, अशिक्षा, अस्पृश्यता आदि कुछ ऐसी समस्याएं हैं जो दलित आत्मकथाओं का केंद्र बिंदु रही है। सामाजिक विकलांगता, जातीय व्यवस्था, आर्थिक असंतुलन, समकालीन क्रूरताएं तथा अस्मिता का संघर्ष दलित लेखन का मुख्य विषय रहे हैं। ये ऐसी व्यवस्थापरक सामाजिक कुरीतियां, कमियां है, जिनका समूल विनाश किए बिना समाज में समानता और बंधुत्व की कल्पना व्यर्थ है।

– डॉ. ओम प्रकाश सैनी (डी.लिट्.)
एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी विभाग)
आर. के. एस. डी. कॉलेज, कैथल (हरियाणा)
संपर्क 9466544566

संदर्भ :

1. मोहनदास नैमिशराय, हिंदी दलित साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन 35, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2018, पृष्ठ. 172
2. मोहनदास नैमिशराय, अपने–अपने पिंजरे की भूमिका से, डॉ. महीप सिंह, वाणी प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या. 8
3. मोहन दास नैमिशराय, अपने–अपने पिंजरे, भाग एक पृष्ठ. 17

क्षिप्रा महिला मण्डल एवं समग्र चेतना ग्रामोत्थान महिला कल्याण समिति

द्वारा केन्द्रीय जेल भैरवगढ़ में बंदी महिलाओं के साथ

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस

कार्यक्रम की चित्रमय झलकियाँ

जेल अधीक्षक श्री साहू जी दीप प्रज्वलन करते हुए

क्षिप्रा महिला मंडल द्वारा मुख्य अतिथि डॉ. तारा परमार का स्वागत करते हुए संस्था अध्यक्ष सुशीला खण्डेलवाल एवं स्वाति फटाले व संस्था की सदस्यगण

क्षिप्रा महिला मंडल एवं समग्र चेनता ग्रामोत्थान की अध्यक्ष एवं सदस्यों द्वारा दीप प्रज्वलन

बांए से श्रीमती सुशीला खण्डेलवाल, डॉ. तारा परमार, कविता विनोदिया, एवं स्वाति फटाले व अन्य

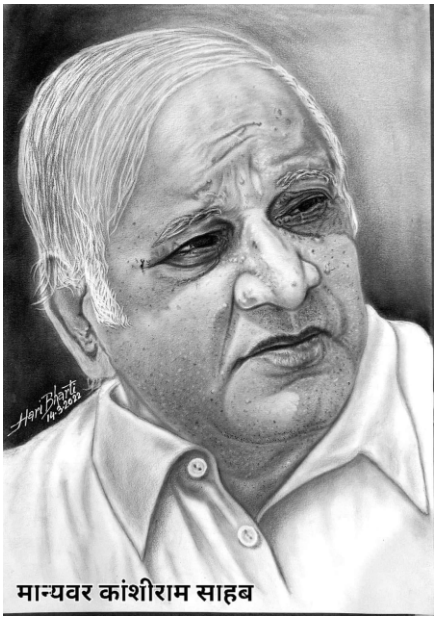

बहुजन आन्दोलन के महानायक
महान प्रेरक व्यक्ति
मान्यवर कांशीराम साहब
के जन्मदिवस (15 मार्च) पर
सादर आदराणांजलि

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2024-2026 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स , 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार